सितंबर–2021
वर्ष-85 । अंक-9 । ₹-19 प्रति । ₹-220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

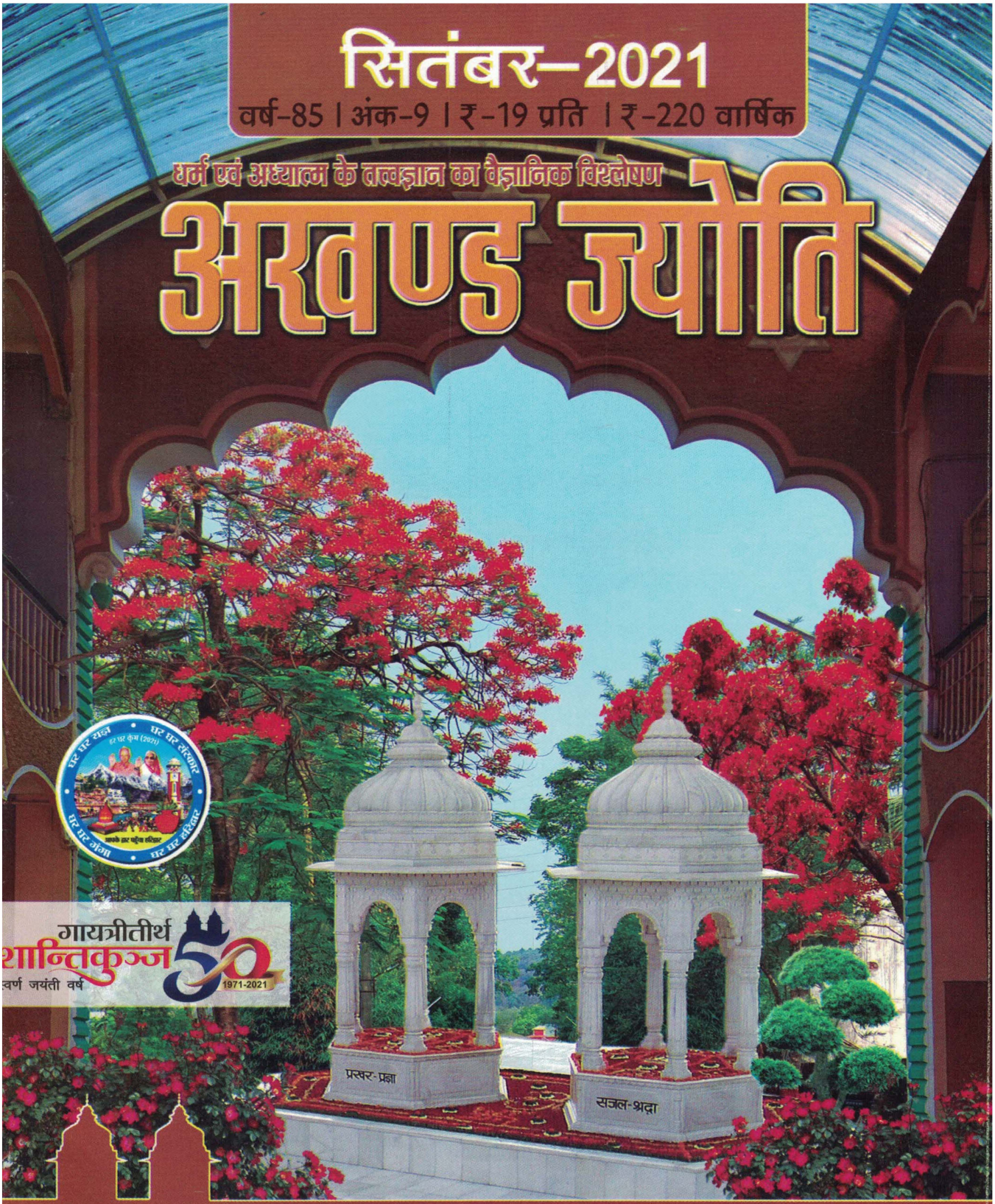

गायत्रीतीर्थ शान्तिकुञ्ज
स्वर्ण जयंती वर्ष
1971-2021

5 वर्तमान चुनौतियाँ व उनके अभिनव समाधान
17 आध्यात्मिक पत्रकारिता व्यापक रूप ले
31 राष्ट्र का सांस्कृतिक जागरण
47 कहीं विलुप्त न हो जाए गौरैया

श्राद्ध का रहस्य

श्रद्धा से श्राद्ध शब्द बना है। श्रद्धापूर्वक किए हुए कार्य को श्राद्ध कहते हैं। सत्कार्यों के लिए, सत्पुरुषों के लिए, सद्भावों के लिए अंदर की, कृतज्ञता की भावना रखना श्रद्धा कहलाता है। उपकारी तत्त्वों के प्रति आदर प्रकट करना, जिन्होंने अपने को किसी प्रकार लाभ पहुँचाया है, उनके लिए कृतज्ञ होना श्रद्धालु का आवश्यक कर्त्तव्य है। ऐसी श्रद्धा हिंदू धर्म का मेरुदंड है। इस श्रद्धा को हटा दिया जाए तो हिंदू धर्म की सारी महत्ता नष्ट हो जाएगी और वह एक निःसत्त्व छूँछ मात्र रह जाएगा। श्रद्धा हिंदू धर्म का एक अंग है, इसलिए श्राद्ध उसका धार्मिक कृत्य है।

माता-पिता और गुरु के प्रयत्न से बालक का विकास होता है। इन तीनों का उपकार मनुष्य के ऊपर बहुत अधिक होता है। उस उपकार के बदले में बालक को इन तीनों के प्रति अटूट श्रद्धा मन में धारण किए रहने का शास्त्रकारों ने आदेश किया है। 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव' इन श्रुतियों में इन्हें देव-नर तनधारी देव मानने और श्रद्धा रखने का विधान किया है। स्मृतिकारों ने माता को ब्रह्मा, पिता को विष्णु और आचार्य को शिव का स्थान दिया है। यह कृतज्ञता की भावना सदैव बनी रहे, इसलिए गुरु जनों का चरणस्पर्श, अभिवंदन करना नित्य धर्मकृत्यों में सम्मिलित किया गया है। यह कृतज्ञता की भावना जीवन भर धारण किए रहना आवश्यक है। यदि इन गुरु जनों का स्वर्गवास हो जाए तो भी मनुष्य को वह श्रद्धा कायम रखनी चाहिए। इस दृष्टि से मृत्यु के पश्चात पितृपक्षों में मृत्यु की वर्ष तिथि के दिन पर्व, समारोहों पर श्राद्ध करने का श्रुति-स्मृतियों में विधान पाया जाता है। नित्य की संध्या के साथ तर्पण जुड़ा हुआ है। जल की एक अंजलि भरकर हम स्वर्गीय पितृदेवों के चरणों में उसे अर्पित कर देते हैं। उनके नित्य चरणस्पर्श, अभिवंदन की क्रिया दूसरे रूप में इस प्रकार पूरी होती है। जीवित और मृत पितरों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का यह धर्मकृत्य किसी-न-किसी रूप में मनुष्य पूरा करता है और एक आत्मसंतोष का अनुभव करता है।

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940,2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 09
सितंबर	: 2021
भाद्रपद-आश्विन	: 2078
प्रकाशन तिथि	: 01.08.2021

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)	
भारत में	: 5000/-

आत्मविजेता

साधना को यदि सरल शब्दों में समझने का प्रयत्न किया जाए तो उसे **आत्मानुशासन** कहकर पुकारा जा सकता है। अपने ऊपर विजय प्राप्त करने वाले को ही सबसे बड़ा विजेता कहा जा सकता है। दूसरों पर आक्रमण करने के लिए तो मात्र सेना की जरूरत होती है, परंतु अपनी कमजोरियों पर आक्रमण करने के लिए साधना की जरूरत होती है। दूसरे तो हमले के समय बेखबर भी हो सकते हैं, पर आत्मविजेता तो सदा जागरूक रहने वाला ही बन सकता है।

स्वामी रामतीर्थ की अमेरिका यात्रा के दौरान अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट उनसे मिलने आए। स्वामी रामतीर्थ स्वयं को बादशाह रामतीर्थ कहकर पुकारा करते थे। रूजवेल्ट ने उनसे पूछा—"वे किस साम्राज्य के बादशाह हैं ?" स्वामी रामतीर्थ ने उत्तर में कहा—"मैं स्वयं का सम्राट हूँ, मैंने अपने आप को जीत लिया है।" राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने तब पहली बार महसूस किया कि साधक ही सच्चा योद्धा है। सही पूछा जाए तो हमारे कुसंस्कार ही हमारे शत्रु हैं। ये कुसंस्कार ही हमारी आंतरिक उत्कृष्टता को दबाकर बैठ जाते हैं और जैसे ही हम उत्कृष्टता की दिशा में कदम बढ़ाते हैं, वैसे ही ये भारी अड़चन बनकर हमारे रास्ते में आ खड़े होते हैं। इन पर एक बार विजय पा लेने का मतलब यह भी नहीं होता कि हम सदा के लिए उन पर विजयी हो गए हैं। इसलिए इनसे निपटना कम बहादुरी का कार्य नहीं है। अनाज में घुन लग जाए तो वो खाने लायक नहीं रह जाता। दीमक, विषाणु भी कुछ ऐसा ही काम घर और इनसान के साथ करते हैं। ठीक इसी तरह दुष्प्रवृत्तियाँ, दुर्गुण, दुर्भावनाएँ मनुष्य को पतन के मार्ग पर ले जाते हैं और उसके आत्मिक उत्थान का प्रयास सफल ही नहीं हो पाता। जिसे आंतरिक दृष्टि से उन्नति करनी है, उसके लिए साधना का पथ अपनाना जरूरी हो जाता है। साधक ही आत्मविजेता है और आत्मविजेता ही विश्वविजेता है। ❐

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- आत्मविजेता 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  वर्तमान चुनौतियाँ व उनके अभिनव समाधान 5
- चुनौतियों को बनाएँ उत्कर्ष की सीढ़ी 7
- भए प्रगट कृपाला दीनदयाला 9
- **पर्व विशेष**
  प्रथम पूज्य भगवान श्री गणेश 12
- हर दिन नया जन्म, हर रात नई मौत 14
- आध्यात्मिक पत्रकारिता व्यापक रूप ले 17
- अधिकारों की स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में
  वर्तमान परिस्थितियों की समीक्षा 19
- **5 सितंबर, शिक्षक दिवस पर**
  महान शिक्षक सर्वपल्ली राधाकृष्णन 20
- संज्ञा की सौम्यता से शांत हुए सूर्यदेव 22
- मन में ध्यान का दीप जला लें 24
- एक गुलदस्ते के पुष्प हम सब 27
- चींटियाँ भी करती हैं पशुपालन 28
- भारतीय संस्कृति के राजदूत स्वामी विवेकानंद 30
- राष्ट्र का सांस्कृतिक जागरण 31
- जीवन-साधना का योगपथ एवं धारणा 33
- अशरीरी आत्माओं से मिलता है सहयोग 35
- त्रिविध बंधन एवं मुक्तिपथ 37
- ईशकृपा बिनु गुरु नहीं, गुरु बिनु नहीं ज्ञान 38
- **चेतना की शिखर यात्रा—228**
  कुछ अदृश्य पन्ने 40
- जल चिकित्सा के प्रयोग 43
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—149**
  आध्यात्मिक मनोचिकित्सा का प्रभाव 45
- कहीं विलुप्त न हो जाए गौरैया 47
- कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति का मार्ग 49
- **युगगीता—256**
  समस्त सृष्टि को अपना शत्रु मानते हैं
  आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य 51
- क्रांतिकारी महर्षि अरविंद 53
- खाद्य पदार्थों में घुलता जहर 54
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—2**
  वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता (उत्तरार्द्ध) 56
- **विश्वविद्यालय परिसर से—195**
  स्वर्णजयंती वर्ष में अप्रतिम सौभाग्य का
  अधिकारी बना विश्वविद्यालय 62
- **अपनों से अपनी बात**
  आध्यात्मिक उत्कर्ष के दो आधार
  सादा जीवन-उच्च विचार 64
- आओ भीतर झाँकें (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

स्वर्ण जयंती वर्ष में ऋषियुग्म के प्रतीकों का दर्शन

सितंबर-अक्टूबर, 2021 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	03 सितंबर	अजा एकादशी
रविवार	05 सितंबर	शिक्षक दिवस
सोमवार	06 सितंबर	कुशाग्रहणी अमावस्या
गुरुवार	09 सितंबर	हरितालिका
शुक्रवार	10 सितंबर	श्री गणेश चतुर्थी
शनिवार	11 सितंबर	ऋषि पंचमी
रविवार	12 सितंबर	सूर्य षष्ठी/बलदेव छठ
शुक्रवार	17 सितंबर	जलझूलनी एकादशी/विश्वकर्मा जयंती
रविवार	19 सितंबर	अनंत चतुर्दशी
सोमवार	20 सितंबर	वं. माताजी म.प्र. दिवस/महालयारंभ
शनिवार	25 सितंबर	वंदनीया माताजी जयंती
गुरुवार	30 सितंबर	मातृनवमी
शनिवार	02 अक्टूबर	इंदिरा एकादशी/गांधी/शास्त्री जयंती
सोमवार	04 अक्टूबर	परमपूज्य गुरुदेव जयंती
बुधवार	06 अक्टूबर	सर्वपितृ श्राद्ध अमावस्या
गुरुवार	07 अक्टूबर	नवरात्रारंभ
सोमवार	11 अक्टूबर	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	15 अक्टूबर	विजयादशमी/ दशहरा
शनिवार	16 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी
बुधवार	20 अक्टूबर	वाल्मीकि जयंती/पूर्णिमा
रविवार	24 अक्टूबर	करवा चौथ
गुरुवार	28 अक्टूबर	अहोई अष्टमी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

विशिष्ट सामयिक चिंतन

वर्तमान चुनौतियाँ व उनके अभिनव समाधान

मनुष्य के नैसर्गिक दायित्वों में से एक कर्म को करना है। हमें प्रदत्त दायित्वों का निर्वहन मानवीय आवश्यकताओं में से एक कहा जा सकता है। इसीलिए व्यवसाय, नौकरी-पेशा, कारोबार, शिक्षा, रोजगार—मानवीय समुदाय का अभिन्न अंग बन गए हैं। व्यक्ति कुछ-न-कुछ करता, किसी-न-किसी माध्यम से उपार्जन करता दिखाई पड़ता ही है, चाहे उसके स्वरूप भिन्न क्यों न हो जाते हों। यह चिंतन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि आज हम यह सही से कह पाने की स्थिति में नहीं हैं कि आज से 50 वर्ष बाद के रोजगार जगत् का स्वरूप क्या होगा? ऐसा इसलिए कि विगत दिनों में मशीन लर्निंग से लेकर रोबोटिक्स का जो तीव्रतम विकास उभरकर आया है, वह संभवतया आगामी 50 वर्षों में रोजगार जगत् को वो स्वरूप दे चुका होगा, जिसका अनुमान भी आज लगा पाना संभव नहीं है।

आज तकनीकी क्रांति के कारण हम समाज के लगभग हर हिस्से में ऑटोमेशन को घटता हुआ देख रहे हैं। नैसर्गिक रूप से ऐसा होते देखकर अनेकों को यह डर लगता है कि क्या सभी कुछ स्वचालित हो जाने के बाद इनसान की रोजगार-क्षमता शून्य हो जाएगी? ऐसा नहीं है कि ऐसा डर लोगों को पहले नहीं रहा। जब औद्योगिकीकरण का दौर आया था तब भी अनेकों को ऐसा लगा कि इसके परिणाम कुछ ऐसे ही होंगे और एक बड़ा समुदाय नौकरी व पेशा आदि गँवा चुका होगा, पर इतिहास साक्षी है कि ऐसा कुछ नहीं हुआ। रोजगार की संभावनाएँ बढ़ीं भी, लोगों का जीवन सुखमय भी बना और समृद्धि व संपदा के अनेकों नए अवसरों ने भी जन्म लिया। इन सब आश्वासनों के बावजूद इस बार लोगों के आशंकित होने के कारण भी वाजिब हैं।

मनुष्य के भीतर हम दो तरह की मुख्य शक्तियाँ पाते हैं—एक को शारीरिक बल तो दूसरे को बुद्धि बल कहा जा सकता है। औद्योगिकीकरण के दौर में मशीनों ने मानवीय शारीरिक श्रम का स्थान तो लिया, पर तब भी उन पर बौद्धिक नियंत्रण इनसानों का ही था। कृषि, उद्योग इत्यादि में ट्रैक्टरों के आने पर, कारखानों के लगने पर इनसानों की भूमिका घटी नहीं, बल्कि बढ़ी ही; क्योंकि संचार, सूचना, विश्लेषण जैसे बौद्धिक कार्य इनसानों द्वारा ही किया जाना संभव था, परंतु इस बार की चुनौतियाँ भिन्न हैं और इस बार आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस(AI) के प्रभुत्व के बढ़ने के साथ-साथ इनसान की भूमिका पहली बार संकट में पड़ती नजर आती है। सामान्य रूप से AI का नाम आने पर लोग ये ही सोचते हैं कि बात कंप्यूटर्स की हो रही है, परंतु ऐसा है नहीं। जीव विज्ञान से लेकर सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में आज हम स्व-चालितीकरण को या ऑटोमेशन को होता हुआ देख रहे हैं।

उदाहरण के तौर पर गाड़ी चलाने का काम बौद्धिक, शारीरिक क्षमताओं के अतिरिक्त अनुमान लगाने की क्षमता का भी है। गाड़ी चलाने वाले को यह अनुमान होना जरूरी है कि जो व्यक्ति सड़क के किनारे खड़ा है, वो किस गति से सड़क की ओर आ रहा है, ताकि वो समय पर ब्रेक लगा सके। अब धीरे-धीरे ड्राइवरों के बिना चलने वाली स्वचालित गाड़ियाँ इस कार्य को इनसानों से बेहतर करती दिखाई पड़ रही हैं।

चूँकि हम भारत में ऐसा घटते नहीं देख रहे हैं इसलिए हम यह अंदाजा नहीं लगा पाते कि आज हजारों से ज्यादा ऐसी गाड़ियाँ अमेरिका व यूरोप की सड़कों पर उतर चुकी हैं और एक दशक के भीतर वे संभवतया पूरे विश्व में दैनंदिन तौर पर उपयोग में लाई जा रही होंगी। प्रश्न उठता है कि यदि संपूर्ण विश्व में मात्र स्वचालित गाड़ियाँ ही चलने लगीं, जैसा होने की संभावना आगामी 50 वर्षों में दिखती है तो इतने इनसानों के दैनंदिन रोजगार का क्या होगा? ऐसे में वो क्या करेंगे?

आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस मात्र कामों को बेहतर ढंग से करने का गुण नहीं रखता, बल्कि वो कुछ ऐसे गुण भी रखता है, जो अभी इनसानी क्षमता में नहीं आते हैं, जैसे स्वयं के बेहतरीकरण यानी स्वयं को अपडेट करने की क्षमता। इनसान कई बार तकनीकी के साथ सामंजस्य न बिठा पाने के कारण वक्त की रफ्तार में पीछे छूट जाते हैं; जबकि AI के लिए ऐसा कर पाना संभव है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई चिकित्सा का नया तरीका अमेरिका में

ईजाद होता है तो उसे अफ्रीका के चिकित्सकों को सिखा पाने में वर्षों लग जाते हैं, परंतु यदि उसकी जगह आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस का इंटीग्रेटेड नेटवर्क हो तो एक बटन दबाते ही पूरे विश्व में उस जानकारी को पहुँचा पाना संभव है। ये गुण कुछ ऐसे हैं और उनके प्रभाव इतने व्यापक हैं कि यदि वे लागू हो भी जाते हैं तो उनका लाभ निश्चित रूप से मानवता को मिलने ही वाला है।

उदाहरण के तौर पर प्रत्येक वर्ष सड़क दुर्घटनाओं की संख्या 13 लाख के करीब है। यदि सभी जगह स्वचालित वाहन हों तो इनमें से 90% को तुरंत रोक पाना संभव है; क्योंकि सड़क दुर्घटनाओं में से लगभग 35% दुर्घटनाएँ शराब पीकर गाड़ी चलाने के कारण, 30% तेज चलाने के कारण, 25% ध्यान बँटने के कारण होती हैं। ये सारी दुर्घटनाएँ स्वचालितीकरण से तुरंत रोकी जा सकेंगी। साथ-ही-साथ अब ऐसे तरीके खोजे जा रहे हैं, जहाँ आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस मनुष्य की मनोदशा के अनुसार परामर्श, संवाद आदि कर पाने की स्थिति में होगा। संभव है कि कुछ दशकों बाद व्यक्तिगत संबंधों में भी उनका प्रवेश होने लगे।

जहाँ ऐसा होता देखकर यह लग सकता है कि लगभग सभी मानवीय क्षमताओं व दायित्वों पर मशीनों का वर्चस्व स्थापित होने जा रहा है तो वहीं यह भी सत्य है कि यदि सभी दैनंदिन कार्यों को ऑटोमेशन के द्वारा पूरा किया जा सका तो फिर मानवीय क्षमताओं का और बुद्धिकौशल का उपयोग उन कार्यों को करने में किया जा सकेगा, जो आज मानवता के अस्तित्व के लिए चुनौती बनकर खड़े हैं और इन कार्यों में असाध्य रोगों के उपचारों से लेकर पर्यावरण संकट के समाधान सम्मिलित हैं। सारांश में ऐसा कहा जा सकता है कि ऐसा होने के कारण उन क्षेत्रों में मानवीय रोजगार की संभावनाएँ जन्म लेने लगेंगी, जहाँ आज लेती दिखाई नहीं पड़ती हैं। उस दृष्टि से आने वाले भविष्य को इनसान व मशीन के बीच प्रतिस्पर्धा का नहीं, बल्कि सहयोग का कहकर मापना उचित होगा।

यदि ऐसा हुआ तो आज के समय की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता अभी से मानव समुदाय को उस तरह के समय के लिए तैयार करने की है। ऐसा इसलिए कि औद्योगिकीकरण के समय मशीनों को चलाने के लिए इनसान को बहुत ज्यादा प्रशिक्षण देने की जरूरत नहीं पड़ी थी। गाड़ी चलाने से लेकर कारखानों के उपकरणों को नियंत्रित करने का कार्य ज्यादातर लोग कुछ दिनों के प्रशिक्षण से सीख ही जाते हैं, परंतु आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस को नियंत्रित करने के लिए एवं उनसे इनसानों की तरह काम लेने के लिए जिस बुद्धि-कौशल की आवश्यकता पड़ सकती है—उसके लिए अभी ज्यादातर लोग तैयार नहीं दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के तौर पर एक बंदूक को लेकर उस व्यक्ति को लड़ाई हेतु भेजना, जिसने कभी उसे चलाया न हो; उतना चुनौतीपूर्ण नहीं कहा जा सकता, जितना बिना तैयारी और जानकारी के एक नौसिखिए को ड्रोन चलाने के लिए भेज देना।

यह चिंतन आज की तारीख में इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि यदि सही तैयारियाँ और सही प्रशिक्षण समय रहते नहीं दिए गए तो भविष्य में एक बड़ी तादाद उन लोगों की होगी, जो स्वयं को किसी भी किस्म के रोजगार के लिए तैयार नहीं कर पाएँगे। बेरोजगारी के कारण जन्म लेने वाली आर्थिक समस्याओं से लेकर मानसिक व सामाजिक स्वास्थ्य की समस्याओं का अंदेशा सहजता से लगाया जा सकता है। तनाव की समस्या आज ही विकराल रूप लेती नजर आ रही है और यदि एक बड़ा जनसमूह उसके घेरे में आ गया तो संभव है कि हम एक बड़े आंतरिक युद्ध या द्वंद्व का सामना कर रहे हों।

इन सब समस्याओं के मध्य जो एक महत्त्वपूर्ण बात है वो यह कि जब बाह्य जगत् में सारी आवश्यकताओं की पूर्ति मशीनों द्वारा होने लगेगी तो संभव है कि इनसान जीवन के मुख्य प्रश्नों पर सोचने के लिए बाध्य हो। हमारा मानवीय जीवन के रूप में लक्ष्य क्या है, उद्देश्य क्या है—ये प्रश्न आज मनुष्य को व्यथित नहीं कर पाते हैं; क्योंकि उसकी समस्त ऊर्जा नौकरी करने व पैसे बटोरने में चली जाती है, पर यदि व्यक्ति को उन आवश्यकताओं के लिए भागना न पड़े तो हो सकता है कि इन प्रश्नों पर चिंतन करने के लिए वो विवश हो और आध्यात्मिक मार्ग की ओर चले, जैसा कि होता हुआ हम आज भी देख सकते हैं। आज के समय में भी अनेक लोग जीवन के उद्देश्य के लिए भटकते दिखाई पड़ते हैं; क्योंकि पैसा आ जाने से मन की शांति खो-सी गई है। बढ़ते स्वचालितीकरण के दौर में ये प्रश्न कुछ ऐसे हैं, जिन पर गहन चिंतन आज के समय की सर्वोपरि आवश्यकता है।

❑

चुनौतियों को बनाएँ उत्कर्ष की सीढ़ी

जीवन की परिभाषाएँ कई हो सकती हैं, जिनमें से एक है चुनौतियों का सामना करते हुए इन्हें उत्कर्ष की सीढ़ी बनाना। वह जीवन ही क्या, जो चुनौतियों से, संघर्षों से भरा हुआ न हो। चुनौतियों के बीच तपकर ही कोई व्यक्ति कुंदन बन निखरता है और अपनी प्रामाणिकता के साथ कालजयी चमक बिखेरता है।

बिना चुनौतियों के आराम के साथ ठहरा हुआ, संघर्ष से पलायन करता हुआ जीवन तो समय के साथ जंग खा जाता है और निहित संभावनाओं को साकार किए बिना ही अपनी चमक खो बैठता है और अंतत: मानव जीवन से जुड़े परम सौभाग्य से भी वंचित रह जाता है। हालाँकि हर चुनौती का सामना करते हुए आगे बढ़ना भी कोई सरल कार्य नहीं होता।

जीवन में चुनौतियों के आने पर स्वाभाविक रूप में पहली प्रतिक्रिया भय और पलायन की रहती है। लगता है कि जैसे चुनौती अस्तित्व के लिए खतरा बनकर, कहर बरसाने वाली है, इसको लीलने वाली है। इस आशंका के साथ बुद्धि अपंग हो उठती है तथा जीवन के निर्णय प्रभावित होने लगते हैं।

भय, असुरक्षा से प्रेरित इस मन:स्थिति में कई बार व्यक्ति ऐसे अदूरदर्शी निर्णय ले बैठता है, जिनके लिए बाद में पश्चात्ताप करना पड़ता है। व्यक्ति स्वयं अपनी गरिमापूर्ण स्थिति से गिरता अनुभव करता है और मानव जीवन लघुता, हीनता एवं अशक्तता के बोध से क्लांत हो जाता है। साथ ही चुनौतियों का सही ढंग से सामना न कर पाने की स्थिति में, संसार की बेढंगी-वक्र चाल में उलझने का खतरा भी साथ में रहता है।

आपसी मनमुटाव, कलह-क्लेश, ईर्ष्या-द्वेष, विरोधियों की दुरभिसंधियों के भँवर में उलझने की संभावनाएँ भी ऐसे में बढ़ जाती हैं। व्यक्ति का जो स्वाभाविक, निर्द्वंद्व विकास होना चाहिए था, वह कहीं अवरुद्ध-सा हो जाता है; जबकि प्रकृति के विधान में चुनौतियों का आशय यह नहीं रहता। ये तो व्यक्ति के अंदर निहित क्षमताओं को निखारने के लिए आती हैं।

यदि विवेक और साहस के साथ इन चुनौतियों का सामना किया गया होता तो ये ही प्रगति और उत्कर्ष की सीढ़ियाँ बन जातीं। चुनौतियों को एक तरह से ईश्वरीय उपहार मान सकते हैं, जो व्यक्ति को नष्ट-भ्रष्ट या नेस्तनाबूद करने नहीं, बल्कि उसे और मजबूत बनाने के लिए आती हैं। ये व्यक्ति की आंतरिक कमियों, न्यूनताओं एवं दुर्बलताओं को इंगित करने आती हैं, प्रयास की शिथिलता को दिखाने आती हैं, बेहोशी से जगाने आती हैं और अंतर्निहित अनंत संभावनाओं के द्वार खोलने आती हैं। ये चुनौतियाँ जीवन की अपूर्णता की ओर चीख-चीखकर इशारा करती हैं, जिससे कि व्यक्ति आवश्यक पात्रता का विकास करते हुए अंतर्निहित संभावनाओं को साकार करते हुए पूर्णता के पथ पर होशोहवास के साथ आगे बढ़ सके।

इस तरह चुनौतियों को अपने उत्कर्ष एवं प्रगति की सीढ़ी कैसे बनाएँ—इसके लिए पहला चरण है कि इनको अपना हितचिंतक मानते हुए इन्हें सहर्ष स्वीकार करें। इनके साथ जुड़े भय और शंका के दुर्बल भाव का सामना करें। फिर इनमें निहित आवश्यक संदेश को समझें और इस संदेश को ठोस कार्य योजना में बदलें और आवश्यक योग्यता और पात्रता को विकसित करते हुए अभीष्ट लक्ष्य की ओर बढ़ें।

इस संदर्भ में चुनौतियों को स्वीकार करने का साहस रखना एक महत्त्वपूर्ण चरण रहता है। साहसिक प्रकृति के लोग ऐसी चुनौतियों का इंतजार करते रहते हैं, बल्कि इन्हें निमंत्रण तक देते हैं और जब ये आती हैं तो दोनों हाथों से इन्हें स्वीकार करते हैं और जीवन के सफर को रोमांचक बनाते हैं तथा इनका प्रत्युत्तर देते हुए एक सार्थक जीवन की ओर कदम बढ़ाते हैं।

किसी ने सही कहा है कि चुनौतियाँ जहाँ जीवन को रुचिकर बनाती हैं तो वहीं इन पर विजय जीवन को अर्थपूर्ण बनाती है। वास्तव में अस्तित्व के सत्य, धर्म और ईमान को चुनौती देती परिस्थितियों के सार्थक प्रत्युत्तर से अधिक संतोषजनक कुछ नहीं हो सकता। यहाँ सावधानी की भी आवश्यकता रहती है, ताकि चुनौतियों का जवाब देते-देते कहीं व्यक्ति स्वयं संसार के विषम प्रवाह में न उलझ जाए।

यह ध्यान रखना जरूरी है कि सांसारिक दुर्भाव, द्वेष, जड़ता एवं विकार आदि कहीं स्वभाव की सरलता, तरलता एवं शुद्ध-बुद्ध, पावन प्रकृति को प्रभावित कर विकृत न कर दें; क्योंकि आंतरिक शांति, स्थिरता एवं संतुलन की कीमत पर पाई गई उपलब्धि या सफलता पर संतोष नहीं किया जा सकता तथा इन पर पुनर्विचार आवश्यक हो जाता है।

इसके लिए जीवन के समग्र विकास के राजमार्ग को समझने व धर्ममार्ग से च्युत हुए बिना धैर्यपूर्वक मंजिल तक पहुँचने का जज्बा धारण करना अभीष्ट रहता है। इस तरह चुनौतियों का सामना करते हुए व्यक्ति को एक तरह से दोहरे मोर्चे पर जूझना होता है। बाहरी चुनौतियाँ जहाँ आंतरिक दुर्बलता को इंगित कर रही होती हैं तो वहीं स्वभावगत दोष भी ताल ठोककर सामना करने के लिए महाचुनौती की तरह सामने खड़े होते हैं।

इंद्रियों की विषयासक्ति, मन की सुख-लालसा, आंतरिक राग-द्वेष, अहंता एवं संस्कारगत दुर्बलताएँ जीवन के संघर्ष को विकट बना रहे होते हैं। ऐसे में व्यक्ति को दोहरे स्तर पर चुनौतियों से जूझना होता है। बिना आध्यात्मिक समझ के इनका सार्थक प्रत्युत्तर संभव नहीं हो पाता। मानव प्रकृति की सम्यक समझ यहाँ आवश्यक हो जाती है, जो गुरुजनों के सत्संग, स्वाध्याय एवं चिंतन-मनन के साथ विकसित होती है।

आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि के साथ जीवन की बाह्याभ्यंतर चुनौतियों के प्रत्युत्तर सरल हो जाते हैं। चुनौतियों का सामना व इनको पार करते हुए यह ध्यान रखना पड़ता है कि हमारे कदम सत्य पर अडिग हैं, धर्म से युक्त हैं और शिवभाव से जुड़े हैं।

इस तरह अपने अंतरंग में ईमान और साथ में भगवान के साथ हर पल का संग रहने पर हर चुनौती जीवन में समाधान का हिस्सा बनती है तथा व्यक्ति के सर्वांगीण उत्कर्ष की सीढ़ी बनते हुए पूर्णता के ध्येय की ओर व्यक्ति को आगे बढ़ाती है। ❑

ऋषि मंडल बैठा हुआ था। वर्तमान युग में आसन्न विभीषिकाओं पर चर्चा चल रही थी। विचार-विमर्श के क्रम में प्रश्न उभरा—मनुष्य के समक्ष इस युग में सबसे बड़ा संकट क्या है? जिज्ञासा का समाधान वहीं उपस्थित ऋषि प्रवर ने किया।

वे बोले—"इस युग का सबसे विषम संकट प्रत्यक्षवाद और परिणामों की त्वरित आकांक्षा ही है। कार्य करने से पूर्व ही मनुष्य लाभ की सोचता है और उसे पाने के लिए किसी भी सीमा तक उतरने के लिए तत्पर है। आदर्शों और मूल्यों का स्थान चालबाजी और कुचक्र ने ले लिया है और अधिकाधिक मनुष्य इस अनैतिकता को ही जीवन का लक्ष्य और उद्देश्य मानते हैं। इतना ही होता तो भी सहन किया जा सकता था, पर प्रत्यक्षवाद ने शरीर और विलास-वैभव को प्राथमिकता दे दी है। जो दिखे, वही सच माना जाए तो आत्मा व परमात्मा के अस्तित्व पर कोई क्यों विश्वास करे? सत्य, धर्म व न्याय के पथ पर चलने का कौन साहस दिखाए?" सबकी जिज्ञासा का समाधान हुआ एवं ऋषिगणों ने संकल्प लिया कि उनकी तप की ऊर्जा मनुष्य में सात्त्विकता का बोध जगाएगी एवं सुरदुर्लभ इस नर तन को यों ही नष्ट न होने दिया जाएगा।

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला

बालक नारायण की अवस्था मात्र दस साल की थी तभी उसके पिता हरिदास परलोक सिधार गए। माता पहले ही परलोक सिधार चुकी थीं। इस कारण उसका पालन-पोषण दादी की देख-रेख में हुआ। नारायण के माता-पिता भगवान विष्णु के परम भक्त थे। भगवान विष्णु को अपना आराध्य मानकर वे सदा उनकी भक्ति किया करते और विष्णु सहस्त्रनाम स्तोत्र का नित्य पाठ किया करते थे।

वे नाम-जप के साथ सदा भगवान विष्णु की मनोहर छवि का ध्यान किया करते थे। एकादशी का व्रत भी वे करते थे तथा दीन-दुखियों की सेवा भी वे किया करते थे। ऐसे ही धर्मपरायण परिवार में नारायण का जन्म हुआ था। अस्तु भगवद्भक्ति तो मानो उसे विरासत में ही मिली थी।

भगवान विष्णु से परम अनुराग होने के कारण पिता हरिदास ने उसका नाम नारायण रखा। पुत्र का नाम पुकारते हुए उन्हें सदा भगवान विष्णु के नामस्मरण का सुख प्राप्त होता था। समय बीतने के साथ नारायण बड़ा हुआ। गाँव की एक पाठशाला में उसकी शिक्षा-दीक्षा संपन्न हुई। गाँव में जब भी कोई साधु-संत, महात्मा आदि पधारते तो नारायण उनके दर्शन अवश्य करता व उनका सत्संग अवश्य प्राप्त करता। ब्रह्मज्ञानी संत-महात्माओं का दर्शन व सत्संग पाकर नारायण को आत्मिक आनंद की अनुभूति होती। रामनवमी के अवसर पर नारायण के गाँव में एक महात्मा जी का आगमन हुआ। शाम में सत्संग की व्यवस्था की गई। गाँव के सभी लोग उसमें सम्मिलित हुए। नारायण भी अपनी दादी के साथ सत्संग के लिए अग्रिम पंक्ति में बैठा।

महात्मा जी ने अपने प्रवचन का आरंभ रामचरितमानस की प्रस्तुत पंक्तियों से किया—

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला
कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी
अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा
निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला
सोभासिंधु खरारी॥

अर्थात दीनों पर दया करने वाले कौशल्या के हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियों के मन को हरने वाले उनके अद्भुत रूप का विचार करके माता हर्ष से भर गई। नेत्रों को आनंद देने वाला मेघ के समान श्याम शरीर था, अपनी चारों भुजाओं में वे (खारू) आयुध धारण किए हुए थे, दिव्य आभूषण और वनमाला पहने थे, उनके बड़े-बड़े नेत्र थे। इस प्रकार शोभा के समुद्र तथा खर राक्षस को मारने वाले भगवान प्रकट हुए।

महात्मा जी के मुख से भगवान राम के प्रकट होने के प्रसंग को सुनते हुए नारायण को ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह भगवान राम के प्राकट्य को अपने नेत्रों से देख रहा हो। इस प्रसंग को सुनते हुए नारायण के हृदय में आनंद की लहरें उठने लगीं मानो उसकी आत्मा ब्रह्मानंद में समा गई हो। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसकी आँखों से भगवत्प्रेम अश्रु बनकर बहने लगा। जैसे-जैसे भगवान राम की कथा आगे बढ़ती गई; वैसे-वैसे नारायण के हृदय में भगवान के प्रति प्रेम और भी अधिक उमड़ता गया और वो भावविह्वल होता गया।

प्रभुप्रेम के प्रसंग में वो डूबता जाता और उसकी आत्मा परमात्मा के परम आनंद में उतरती जाती। जैसे अनुकूल जलवायु पाकर किसी नन्हे से बीज से कोई पौधा अंकुरित, पुष्पित व पल्लवित होने लगता है, ठीक वैसे ही यदि व्यक्ति के हृदय में भगवत्प्रेम, भगवद्भक्ति बीज के रूप में विद्यमान है तो वह बीज ब्रह्मज्ञानी गुरुओं, महात्माओं का दर्शन, सान्निध्य व सत्संग पाकर तुरंत ही अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित होने लगता है।

नारायण के साथ भी कुछ ऐसा ही हो रहा था। वहाँ कथा सुनने को तो हजारों लोग बैठे थे, पर नारायण की आत्मा में जो स्फुरणा हो रही थी, उसके अंतरतम में आनंद की जो लहरें उठ रही थीं उनकी अनुभूति या तो नारायण को हो रही थी या नारायण के सम्मुख बैठे महात्मा जी को।

महात्मा जी नारायण की भाव-भंगिमा को देखकर यह बखूबी समझ रहे थे कि अपने उत्तम संस्कार व सच्ची भगवद्भक्ति के कारण ही उसके हृदय में आनंद की लहरें उठ रही हैं। उसका रोम-रोम पुलकित हो रहा है। वह आनंदातिरेक में मग्न है, ध्यानमग्न है। नारायण की ऐसी उत्तम स्थिति को देखकर महात्मा जी भी मन-ही-मन विचार करने लगे कि यदि इस बालक का मार्गदर्शन किया जाए तो यह शीघ्र ही उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर सकता है।

भगवान राम के जीवन चरित्र, उनके द्वारा स्थापित आदर्श व मर्यादाओं का सांगोपांग वर्णन-विश्लेषण करते हुए महात्मा जी ने अंतत: कथा का समापन किया। अब आरती की तैयारी की जा रही थी कि तभी नारायण ने महात्मा जी से विनती करते हुए एक प्रश्न करने की आज्ञा माँगी। महात्मा जी से प्रश्न पूछने की आज्ञा पाकर नारायण ने पूछा—''महात्मन्! जिस प्रकार भगवान राम माता कौशल्या के सम्मुख प्रकट हुए ठीक उसी प्रकार क्या वे मेरे सम्मुख भी प्रकट हो सकते हैं और भगवान मेरे जीवन में प्रकट हुए हैं, इसका आभास या अनुभव मुझे कैसे हो सकता है?''

नारायण के हृदय से निकले हुए सच्चे सारगर्भित प्रश्न को सुनकर महात्मा जी बड़े हर्षित हुए और बोले—''वत्स! जो सर्वव्यापक, निरंजन, निर्गुण, विनोदरहित और अजन्मा ब्रह्म हैं, वे ही प्रेम और भक्ति के कारण कौशल्या जी के सम्मुख प्रकट हुए। जिसके हृदय में भगवान के लिए सच्ची प्रीति है, भक्ति है, उस हृदय में भगवान अवश्य ही प्रकट होते हैं। यदि तुम निरंतर भगवद्भक्ति करते हुए अपने मन को निर्मल बना लो तो तुम निश्चित ही भगवान को प्राप्त कर सकते हो; क्योंकि जिसका मन निर्मल है; वही प्रभु को प्राप्त कर सकता है; पर जिनका हृदय छल-कपट से भरा हुआ है, उनके हृदय में भगवान कैसे प्रकट हो सकते हैं?''

महात्मा जी आगे बोले—''भगवान आनंद के समुद्र व सुख की राशि हैं; इसलिए भगवान का सुमिरन-स्मरण, ध्यान करते हुए भक्त के हृदय में, आत्मा में प्रभु आनंद के रूप में प्रकट होते हैं। इसलिए सच्चा भगवद्भक्त सदा आनंदित व प्रफुल्लित रहता है। भगवान करुणासिंधु हैं अर्थात करुणा के सागर हैं। अत: भगवान भक्त के हृदय में करुणा के रूप में प्रकट होते हैं। भगवान प्रेम के सागर हैं। अस्तु भगवान भक्त के हृदय में प्रेम के रूप में प्रकट होते हैं। भगवान ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिए भगवान भक्त के हृदय में ज्ञान के रूप में प्रकट होते हैं।

''जब भक्त के हृदय में करुणा, प्रेम, संवेदना आदि दिव्य भावनाएँ उमड़ने-घुमड़ने लग जाएँ तब यह समझ लेना चाहिए कि उसके हृदय में भगवान प्रकट हो चुके हैं। भक्त के हृदय में भगवान ज्ञान के रूप में प्रकट होते हैं और ज्ञान के प्रकट होते ही भक्त का अंतस् ईश्वरीय आलोक से आलोकित हो उठता है। उसे नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य का बोध होने लगता है। तब भक्त के हृदय में सबके लिए करुणा, प्रेम, संवेदना की भावनाएँ उमड़ने-घुमड़ने लगती हैं। वह जीवमात्र में भगवान के स्वरूप को निहारने लगता है। वह जीवसेवा को ईश्वर की सेवा मानने लगता है। वह संपूर्ण ब्रह्मांड को ही भगवान की अभिव्यक्ति मानने लगता है।

''तब वह इस संपूर्ण ब्रह्मांड को ही परमात्मा की साकार प्रतिमा के रूप में देखने लगता है। वह इसकी पल-पल अनुभूति करता है। वह विश्वरूप, ब्रह्मांडरूप भगवान की पूजा अपने कर्त्तव्य कर्मों के माध्यम से करने लगता है। भगवान भक्त के हृदय में सच्चाई के रूप में, प्रकट होते हैं। इसलिए सच्चा भगवद्भक्त कभी भी सत्य के मार्ग से, सच्चाई के मार्ग से विचलित नहीं होता। वह कभी भी धर्म के मार्ग का परित्याग नहीं करता। उसे यह दृढ़ विश्वास होता है कि सत्य ही ईश्वर है, अस्तु उसे सत्य मार्ग पर ही चलना है। वह यह मानता है कि सत्य के मार्ग पर चलना ही ईश्वर के मार्ग पर चलना है। सत्य के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति परेशान हो सकता है, पर परास्त नहीं; क्योंकि सत्य के रूप में ईश्वर सदा उसके साथ होते हैं।

''भक्त भगवान की इच्छा को ही सर्वोपरि मानता है। भगवान की इच्छा ही उसकी इच्छा बन जाती है। भगवान दीनबंधु हैं। भगवान अनाथों के नाथ हैं। अस्तु हृदय में भगवान के प्रगट होते ही भक्त भी दीन-दुखियों की सेवा-शुश्रूषा करने लगता है। उनके प्रति उसका हृदय करुणा और प्रेम से भर उठता है। वह समाज में अनाथों का नाथ बनकर रहता है। वह सबका होता है और सभी उसे अपना समझते हैं। वह जीवन की कठिन- से-कठिन परिस्थितियों में भी अपनी ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी और बहादुरी को बनाए रखता है।

''भगवान सर्वशक्तिमान हैं। अस्तु भक्त भी अपने अदम्य साहस, धैर्य व पुरुषार्थ के बल पर सदैव आगे बढ़ता जाता

है। भक्त ओजस, तेजस् व वर्चस् से पूर्ण होता है। भक्त का आत्मबल हमेशा बढ़ा-चढ़ा रहता है। सत्यवान होने के कारण भक्त भी शक्तिशाली हो जाता है। इसलिए वह कभी भी अनीति, अत्याचार, अन्याय के सामने अपना शीश नहीं झुकाता, बल्कि उनका मुकाबला करता है। वह कठिन-से-कठिन चुनौतियों को भी आसानी से पार करता जाता है और भौतिक जीवन को शानदार तरीके से जीते हुए जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष, मुक्ति को प्राप्त करने में सफल होता है।''

महात्मा जी आगे बोले—''वत्स! जिसके हृदय में जैसी भक्ति होती है, प्रभु वहाँ सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं। मेरा तो यह निजी अनुभव है कि भगवान सब जगह समान रूप से व्याप्त हैं, प्रेम से वे प्रकट हो जाते हैं। देश, काल, दिशा, विदिशा में बताओ, ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु न हों?'' महात्मा जी की बातें सुनकर नारायण के मन की तमाम जिज्ञासाएँ शांत हुईं। नारायण ने महात्मा जी के चरण पकड़ लिए और स्वयं को उनका शिष्य बनाने को उनसे विनती भी की। नारायण की पात्रता को देखते हुए महात्मा जी ने उसे '**ॐ नमो नारायणाय**' अष्टाक्षर मंत्र की दीक्षा दी।

एक सच्चे ब्रह्मज्ञानी महात्मा को अपने गुरु के रूप में पाकर नारायण की आत्मा हर्षित और आह्लादित थी तो वहीं एक सच्चे शिष्य को पाकर महात्मा जी भी उतने ही हर्षित व आह्लादित थे। अनंत चतुर्दशी का वह पावन अवसर नारायण के जीवन में सचमुच एक नया जीवन लेकर आया। तत्पश्चात आरती की तैयारी हुई। सत्संग में उपस्थित सभी लोग खड़े होकर भगवान की आरती करने लगे। उस भीड़ में नारायण भी आरती को खड़े हुए।

भगवान की मधुर छवि का अपने हृदय में ध्यान करते हुए नारायण का रोम-रोम पुलकित हो रहा था मानो उनका पूरा शरीर ज्योतिपुंज बन जगमगाने लगा हो, पूरा ब्रह्मांड ही उनके हृदय में उतर आया हो। उनके आनंद की कोई सीमा न रही। इसी बीच आरती संपन्न हुई। उधर महात्मा जी अपने गंतव्य को प्रस्थान करने से पूर्व नारायण को नित्य भगवद्स्मरण, ध्यान, जप, स्वाध्याय व जनसेवा का उपदेश दे गए। नारायण भी अपने गुरु के द्वारा प्रदत्त ज्ञान को हृदयंगम करते हुए जीवन जीने लगे। आखिर वह मधुर पल भी आया, जब ध्यान में मग्न नारायण के सम्मुख स्वयं नारायण अपने चतुर्भुज रूप में, प्रकाश रूप में प्रकट हुए और भगवान के प्रकट होते ही नारायण के हृदय से ये उद्गार भी निकल पड़े—**'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला नारायण हितकारी।'**

सचमुच यदि साधना सच्ची हो, श्रद्धा सच्ची हो, भक्ति सच्ची हो तो वह एक दिन फलीभूत अवश्य होती है और साधक को सचमुच निहाल कर जाती है। ❑

परस्पर चर्चा में मनु से शतरूपा ने पूछा—''भगवन्! मनुष्य को अन्यान्य योनियों में क्यों भटकना पड़ता है? कई बार मनुष्य योनि पाकर भी मुक्त होने के स्थान पर वह फिर पदच्युत कर दिया जाता है। ऐसा क्यों?'' मनु ने उत्तर दिया—

''शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥
इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा।
प्राप्नुवन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम्॥

अर्थात शारीरिक पापकर्मों से जड़ योनियों में जन्म होता है। वाणी के पाप से पशु-पक्षी बनना पड़ता है। मानसिक दोष करने वाले मनुष्य योनि से बहिष्कृत हो जाते हैं। इस जन्म के अथवा पूर्वजन्म के किए हुए पापों से मनुष्य अपनी स्वाभाविकता खोकर विद्रूप बनते हैं।''

पर्व विशेष

प्रथम पूज्य भगवान श्री गणेश

प्रथम पूज्य श्री गणेश परम सात्त्विक देवता हैं। भाद्रपद शुक्ल पक्ष चतुर्थी को सिद्धिविनायक श्री गणेश का प्राकट्य हुआ। वे भगवान शिव-पार्वती के पुत्र के रूप में जन्मे। उनके जन्म पर सभी देवता उन्हें आशीर्वाद देने आए। भगवान विष्णु ने उन्हें ज्ञान का, ब्रह्मा जी ने यश और पूजा का, धर्मराज ने धर्म तथा दया का आशीर्वाद दिया।

भगवान शिव ने उदारता, बुद्धि, शक्ति एवं आत्मसंयम का आशीर्वाद दिया। देवी लक्ष्मी ने कहा कि जहाँ श्री गणेश रहेंगे, वहाँ मैं रहूँगी। देवी सरस्वती ने वाणी, स्मृति एवं वक्तृत्व शक्ति प्रदान की तो देवी सावित्री ने बुद्धि। त्रिदेवों ने उन्हें अग्रपूज्य, प्रथमदेव एवं ऋद्धि-सिद्धि प्रदाता होने का वर प्रदान किया।

श्री गणेश सुख-समृद्धि, ऋद्धि-सिद्धि, वैभव, आनंद, ज्ञान एवं शुभता के अधिष्ठाता देव हैं। संसार में अनुकूल के साथ प्रतिकूल, शुभ के साथ अशुभ, ज्ञान के साथ अज्ञान, सुख के साथ दु:ख घटित होता ही है। प्रतिकूल, अशुभ, अज्ञान एवं दु:ख से परेशांन मनुष्य के लिए गणेश ही तारणहार हैं। वे सात्त्विक देवता हैं और विघ्नहर्ता हैं।

वे न केवल भारतीय संस्कृति एवं जीवनशैली के कण-कण में व्याप्त हैं, बल्कि विदेशों में भी अनेक घरों-कार्यालयों एवं अनेकों उत्पाद केंद्रों में विद्यमान हैं। मनुष्य के दैनिक कार्यों में सफलता, सुख-समृद्धि की कामना, बुद्धि एवं ज्ञान के विकास एवं किसी भी मंगल कार्य को निर्विघ्न संपन्न करने हेतु उन्हें ही सर्वप्रथम पूजा जाता है।

प्रथमदेव होने के साथ-साथ उनका व्यक्तित्व बहुआयामी है व उनका चरित्र लोकनायक का है। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुआयामी एवं बहुरंगी है अर्थात बुद्धिमत्ता, चातुर्य, युद्ध नीति, आकर्षण, प्रेम भाव, गुरुत्व, सुख-दु:ख में उपस्थिति जैसे अनेकों उनके गुण हैं। एक भक्त के लिए वे भगवान तो हैं ही साथ में वे जीवन जीने की कला भी सिखाते हैं।

उन्होंने अपने व्यक्तित्व की विविध विशेषताओं से भारतीय संस्कृति में लोकनायक का पद प्राप्त किया। एक ओर वे राजनीति के ज्ञाता, तो दूसरी ओर दर्शन के प्रकांड पंडित हैं। धार्मिक जगत् में भी नेतृत्व करते हुए ज्ञान, कर्म, भक्ति का समन्वयवादी धर्म उन्होंने प्रवर्तित किया। वे भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं।

प्राचीनकाल से हिंदू समाज कोई भी कार्य निर्विघ्न संपन्न करने के लिए उसका आरंभ उनकी पूजा से ही करता हुआ आ रहा है। भारतीय संस्कृति, एक ईश्वर की विशाल कल्पना के साथ अनेकानेक देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना से फलती-फूलती रही है। सब देवताओं की अपनी-अपनी पूजा का विधान है। गणेश जी सुख-समृद्धि, वैभव एवं आनंद के अधिष्ठाता हैं।

बड़े एवं साधारण सभी प्रकार के लौकिक कार्यों का आरंभ उनके दिव्य स्वरूप का स्मरण करके किया जाता है। व्यापारी नए वर्ष में अपने बही-खातों का आरंभ '**श्री गणेशाय नम:**' लिखकर करते हैं। प्रत्येक कार्य का शुभारंभ गणपति पूजन एवं गणेश वंदना से किया जाता है। विवाह का मांगलिक अवसर हो या नए घर का शिलान्यास, मंदिर में मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा का उत्सव हो या जीवन में षोडश संस्कार का प्रसंग, गणपति का स्मरण सर्वप्रथम किया जाता है।

स्कंद पुराण के अनुसार जो भक्तिपूर्वक भगवान गणेश की पूजा-अर्चना करता है, उसके सम्मुख विघ्न कभी नहीं आते। गणपति गणेश अथवा विनायक सभी शब्दों का अर्थ है—देवताओं का स्वामी अथवा अग्रणी। भिन्न-भिन्न स्थानों पर गणेश जी के अलग-अलग रूपों का वर्णन है, परंतु सब जगह एक मत से गणेश जी की विघ्नहर्ता शक्ति को स्वीकार किया जाता है।

गणेश जी की आकृति विचित्र है, किंतु इस आकृति के आध्यात्मिक संकेतों के रहस्य को यदि समझने का प्रयास किया जाए तो सनातन लाभ प्राप्त हो सकता है। गणेश अर्थात शिवपुत्र अर्थात शिवत्व प्राप्त करना होगा अन्यथा क्षेम एवं लाभ की कामना सफल नहीं होगी। गजानन गणेश की व्याख्या करें तो ज्ञात होगा कि गज दो व्यंजनों से बना है। 'ज' जन्म अथवा उद्गम का प्रतीक है तो 'ग' प्रतीक है गति और गंतव्य का अर्थात गज शब्द उत्पत्ति और अंत का संकेत देता है।

इसका भावार्थ ये ही है कि हम जहाँ से आए हैं, हमें वहीं लौटना है। जहाँ जन्म है, वहाँ मृत्यु भी है। ब्रह्म और जगत् के यथार्थ को बनाने वाले ही गजानन गणेश हैं। गणेश जी की संपूर्ण शारीरिक रचना के पीछे भगवान शिव की व्यापक सोच रही है। एक कुशल, न्यायप्रिय, सशक्त शासक एवं देव के समस्त गुण उनमें समाहित किए गए हैं।

उनका गजमस्तक है अर्थात वे बुद्धि के देवता हैं। वे विवेकशील हैं। उनकी स्मरणशक्ति अत्यंत कुशाग्र है। हाथी की भाँति उनकी प्रवृत्ति प्रेरणा का उद्गम स्थान धीर, गंभीर, शांत और स्थिर चेतना में है। हाथी की आँखें अपेक्षाकृत बहुत छोटी होती हैं और उन आँखों के भावों को समझ पाना बहुत कठिन होता है। दरअसल गणेश तत्त्ववेत्ता के आदर्श रूप में हैं।

गण के नेता में गुरुता और गंभीरता होनी चाहिए। उनके स्थूलशरीर में वह गुरुता निहित है। उनका विशाल शरीर सदैव सतर्क रहने तथा सभी परिस्थितियों एवं कठिनाइयों का सामना करने के लिए तत्पर रहने की भी प्रेरणा देता है। उनका लंबोदर दूसरों की बातों की गोपनीयता, बुराइयों, कमजोरियों को स्वयं में समाविष्ट कर लेने की शिक्षा देता है तथा सभी प्रकार की निंदा, आलोचना को अपने उदर में रखकर अपने कर्त्तव्य पथ पर अडिग रहने की प्रेरणा देता है।

छोटा मुख कम, तर्कपूर्ण तथा मृदुभाषी होने का द्योतक है। गणेश जी का व्यक्तित्व रहस्यमय है, जिसे समझ पाना हर किसी के लिए संभव नहीं है। शासक भी वही सफल होता है, जिसके मनोभावों को पढ़ा और समझा न जा सके। इस प्रकार अच्छा शासक वही होता है, जो दूसरों के मन को तो अच्छी तरह से पढ़ ले, परंतु उसके मन को कोई न समझ सके।

गज मुख पर कान भी इस बात के प्रतीक हैं कि शासक जनता की बात को सुनने के लिए कान सदैव खुले रखे। यदि शासक जनता की ओर से अपने कान बंद कर लेगा तो वह कभी सफल नहीं हो सकेगा। गणेश जी को प्रथम लिपिकार माना जाता है। उन्होंने ही देवताओं की प्रार्थना पर महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत को लिपिबद्ध किया था।

जैन एवं बौद्ध धर्मों में भी गणेश पूजा का विधान है। गणेश जी को हिंदू संस्कृति में आदिदेव भी माना गया है। अनंतकाल से अनेक नामों से गणेश दु:ख, भय, चिंता इत्यादि विघ्नों के हरणकर्ता के रूप में पूजित होकर मानवों का संताप हरते रहे हैं। वर्तमानकाल में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की रक्षा, राष्ट्रीय चेतना, भावनात्मक एकता और अखंडता की रक्षा के लिए गणेश जी की पूजा और गणेश चतुर्थी के पर्व को उत्साहपूर्वक मनाने का अपना विशेष महत्त्व है।

जन-जन के कल्याण, धर्म के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने एवं सुख-समृद्धि, निर्विघ्न शासन-व्यवस्था स्थापित करने के कारण मानवजाति सदा उनकी ऋणी रहेगी। आज के शासनकर्त्ताओं को गणेश जी के पदचिह्नों पर चलने की जरूरत है। अत: हमें अपने जीवन में शुभ, मंगल एवं लाभ की प्राप्ति के लिए प्रथम पूज्य भगवान श्री गणेश जी की अर्चना, अभ्यर्थना करनी चाहिए। ❑

भगवान ने सामूहिक सुख-शांति और सुव्यवस्था की जिम्मेदारी हर मनुष्य के कंधों पर सौंपी है। स्वयं अपराध न करना ही काफी नहीं, दूसरों को अपराध करने से रोकना भी कर्त्तव्य है। स्वयं उन्नति करना, सदाचारी होना ही काफी नहीं, दूसरों को भी ऐसी ही सुविधा मिले इसके लिए प्रयत्नशील रहना भी आवश्यक है। जो इस ओर से उदासीन हैं, वे वस्तुत: अपराधी न दीखते हुए भी अपराधी हैं। चोरी की तरह लापरवाही भी दंडनीय है।

—परमपूज्य गुरुदेव

हर दिन नया जन्म, हर रात नई मौत

मृत्यु जीवन का परम सत्य है और सबसे बड़ा भय भी, लेकिन सामान्यतया मृत्यु के बारे में कोई अधिक सोचता नहीं। ज़ब कोई अपना प्रिय जन मृत्यु को प्राप्त होता है या स्वयं का मृत्यु से किसी रूप में साक्षात्कार हो जाता है तो इन विषम पलों में हम मृत्यु पर गंभीर विचार के लिए विवश-बाध्य हो जाते हैं।

कोरोना काल में हम सब चारों ओर मृत्यु के तांडव के साक्षी रहे हैं। रोज सैकड़ों, हजारों की संख्या में लोगों के मरने की खबरें आती रहीं और धीरे-धीरे ये समाचार का सामान्य-सा हिस्सा प्रतीत होने लगा, लेकिन जब कोई अपना नजदीकी स्वजन, प्रियजन बिछड़ा तो जीवन गहरे दु:ख, शोक एवं वेदना से संतप्त हो उठा और हम मृत्यु के सत्य के बारे में सोचने के लिए मजबूर हुए।

इन पलों में एक बार तो ईश्वर के विधान पर तक प्रश्न उठे कि वह इतना क्रूर कैसे हो सकता है। कितने सारे असमय ही इस महामारी के कारण काल-कवलित हुए, लेकिन मृत्यु पर किसका वश चल सकता है। अंतत: मृत्यु के अटल विधान को ऐसे ही स्वीकार करना ही पड़ता है, जैसे दिन के बाद रात का नित्यक्रम। मृत्यु जीवन का एक अकाट्य, किंतु कटु सत्य है।

जो भी इस मृत्युलोक में आया है, उसे एक दिन इसे छोड़कर जाना होगा। चाहे वो गरीब हो या अमीर; सामान्य व्यक्ति हो या महापुरुष। भगवान राम, श्रीकृष्ण, बुद्ध जैसी अवतारी सत्ताएँ भी इस धरा पर आईं और चली गईं। यहाँ सबकी एक सीमित, किंतु एक निश्चित भूमिका रहती है। कुछ लोग इसे समझ पाते हैं, अधिकांश इसे समझे बिना ही यहाँ से विदा हो जाते हैं।

एक सार्थक एवं सुखी जीवन के लिए मृत्यु की इस पहेली पर विचार अभीष्ट हो जाता है। विज्ञजनों की माने तो जीवन को सही ढंग से जीते हुए मृत्युरूपी भय का बखूबी सामना किया जा सकता है, बल्कि एक उत्सव के रूप में इसको गले लगाते हुए जीवन की महायात्रा पर आगे बढ़ने का सुयोग बनाया जा सकता है।

प्रतिदिन मृत्युलोक के इस चौराहे पर कितने सारे लोग आते हैं और जाते हैं। इन्हें हम कितना कौतुक भरी दृष्टि के साथ देखते हैं। लोगों के या वाहनों के आने-जाने के इस सिलसिले को कहीं कोई बुरा नहीं मानता, दु:खी नहीं होता, बल्कि इसको मजे से देखते हैं, इसका आनंद तक लेते हैं और स्वयं भी कुछ पल इसका हिस्सा बनकर अपने गंतव्य स्थल की ओर बढ़ जाते हैं। कुछ ऐसा ही इस धरती के, मृत्युलोक के चौराहे पर आते-जाते हर व्यक्ति का आवागमन का सिलसिला न जाने कब से चल रहा है।

एक सराय की भाँति इस मृत्युलोक पर हम ठहरते हैं और फिर समय होने पर इसे छोड़ अपने अगले गंतव्य की ओर बढ़ते हैं। जीवन का यह सफर एक रेलयात्रा जैसा मान सकते हैं, जिसमें सब अपने-अपने स्टेशन आने पर उतरते रहते हैं। सराय या रेल के सहयात्रियों से हम अनावश्यक रिश्तेदारी या मोह-आसक्ति नहीं बाँधते। न ही इसके कमरों या डिब्बों पर अपना अधिकार जमाकर कोई लड़ाई-झगड़ा या मुकदमेबाजी में उलझते हैं।

ऐसे ही जीवनरूपी सराय या रेलयात्रा के साथ भी अनासक्त भाव से रहकर जिया जा सकता है। जीवन के इस सत्य से हम जितना जल्दी रूबरू हो जाएँ, उतना उत्तम रहेगा। हमारी धरती पर अल्पकाल की अवधि कुछ निश्चित उद्देश्य के लिए मिली हुई है। इस उद्देश्य को पहचानना व इसे प्राप्त करने के लिए सचेष्ट प्रयास करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य बनता है।

जिस मानव जीवन में परमेश्वर ने अपनी सारी संभावनाएँ भरकर भेजा हो, उन संभावनाओं को साकार करने के प्रयास में जुट जाना है। तन-मन एवं अंतरात्मा जैसे ईश्वरप्रदत संसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए अपनी संभावनाओं को साकार करना है और साथ ही अपने पारिवारिक-सामाजिक दायित्वों-कर्त्तव्यों को पूरा करते हुए अंतत: आत्मज्ञान से लेकर मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, समाधि आदि की ब्राह्मीस्थिति को प्राप्त करते हुए जीवन की महायात्रा पर आगे बढ़ना है।

अधिकांश इस जीवनरूपी सराय, चौराहे या रेलयात्रा से अनावश्यक मोह-ममता पालकर अपने मूल उद्देश्य से भटक जाते हैं। उन्हें अपने गंतव्य का बोध नहीं रहता और

संकीर्ण स्वार्थ, क्षुद्र अहंकार और वासना-तृष्णा के बंधन में जकड़ते हुए पाप की गठरी ढोते रहते हैं और जब विदाई का समय आता है तो एक भारी बोझा लादकर संसार से विदा होते हैं।

ऐसे में उनका पूरा जीवन जैसे एक त्रासदी की तरह प्रतीत होता है और शरीर छोड़ते समय मृत्यु के आने पर भारी पश्चात्ताप के साथ गहरी वेदना एवं दु:ख-संताप के साथ व्यक्ति को कलपते देखा जा सकता है। यही स्थिति अनावश्यक मोह पाल बैठे व्यक्ति की अपनों के वियोग-बिछोह पर होती है।

मृत्यु से इस भय-संताप का मुख्य कारण अज्ञान है, जिसके चलते शरीर व नश्वर जीवन से मोह आसक्ति जुड़ जाती है। इसी के कारण मृत्यु के आने पर सब कुछ छूटने व विलग होने की कल्पना मात्र से सिहरन पैदा होती है। अपनों के वियोग की कल्पना मात्र दु:खों का पहाड़ गिरा देती है। कुछ पल के लिए शोक की स्थिति का आना तो स्वाभाविक है, जिस पर विवेकवान व्यक्ति अपनी पूर्व तैयारी एवं सूझ के आधार पर काबू पा लेते हैं और फिर जीवन को सामान्य संतुलित ढंग से जीते हैं, लेकिन मोहग्रस्त व्यक्ति अनावश्यक भय, तनाव एवं भीषण संताप से होकर गुजरने के लिए विवश होते हैं। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन करें और किसी के प्रति अनावश्यक मोह न पालें।

साथ ही मरण को सदा स्मरण रखें। यह जीवन की महायात्रा का एक अहम पड़ाव है, जिसकी समय रहते तैयारी करनी है। अपनी देह का त्याग और अपनों का बिछड़ना, दोनों ही इस नश्वर जीवन का अकाट्य विधान हैं। जीवन के आदि आधार और अंतिम गंतव्य परमपिता परमात्मा को स्मरण करते हुए अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन करते हुए आत्मभाव में जीने का अभ्यास करते रहना ही इसका एकमात्र एवं स्थायी समाधान है। बाकी मृत्यु तो इस जीर्ण-शीर्ण शरीररूपी चोले के लिए एक वरदान की तरह से है, जीवन की लंबी एवं थकाऊ पारी के बाद एक विश्रांतिकाल की तरह से है, जिसके बाद जीवात्मा तरोताजा होकर जीवन की नई पारी प्रारंभ करती है।

मृत्यु हमें सदा इस नश्वर जीवन के शाश्वत आधार को समझने, जीने व अपनाने की प्रेरणा देती है, महाकाल-महाकाली को अपने इष्ट-आराध्य के रूप में वरण करने का ठोस आधार देती है, जिससे कि हमें अपना परम गंतव्य सतत सुमिरन रहे। परमपूज्य गुरुदेव ने तत्त्वबोध की साधना के रूप में इसका सरल-सा, किंतु प्रभावशाली मंत्र दिया है, जिसका प्रतिदिन सोते समय अभ्यास किया जा सकता है। युगऋषि के शब्दों में हर दिन नया जन्म, हर रात नई मौत का अभ्यास चारपाई पर पड़े-पड़े प्रतिदिन प्रात: एवं रात्रि को किया जा सकता है।

प्रात: आत्मबोध के साथ दिन भर की चुस्त-दुरुस्त दिनचर्या का निर्धारण एवं रात्रि के समय इनका लेखा-जोखा करते हुए सोने से पूर्व तत्त्वबोध का अभ्यास। सब कामों से निवृत्त होकर जब निद्रा देवी की गोद में जाने की घड़ी आए, तो कल्पना करनी चाहिए कि एक सुंदर नाटक का पटाक्षेप हो चला। हमें सदा यह भान होना चाहिए कि यह संसार एक नाट्यशाला भर है। आज का दिन अपने को अभिनय करने के लिए मिला था सो उसको अच्छी तरह से खेलने का ईमानदारी से प्रयत्न किया। जो भूलें रह गईं, उन्हें याद रखेंगे और अगले दिन वैसी पुनरावृत्ति न होने देने की अधिक सावधानी बरतेंगे।

अनेक वस्तुएँ इस अभिनय में प्रयोग करने को मिलीं, अनेक साथियों का साथ रहा। उनका सान्निध्य एवं उपयोग जितना आवश्यक था कर लिया गया, अब यथासमय छोड़कर पूर्ण शांति के साथ अपनी आश्रयदात्री माता निद्रा—मृत्यु की गोद में निश्चिंत होकर शयन करते हैं। यह भावना वैराग्य का अभ्यास है। अनासक्ति का प्रयोग है। उपलब्ध वस्तुओं में से एक भी अपनी नहीं, साथी व्यक्तियों में से एक भी अपना नहीं। वे सब अपने परमेश्वर और अपने कर्तृत्व की उपज हैं। हमारा न किसी पर अधिकार है और न स्वामित्व।

हर पदार्थ और हर प्राणी के साथ कर्त्तव्यबुद्धि से ठीक प्रकार व्यवहार कर लिया जाए, यही अपने लिए उचित है। इनसे अधिक मोह-ममता के बंधन बाँधना, स्वामित्व और अधिकार की अहंता जोड़ना निरर्थक है। अपना तो यह शरीर भी नहीं, कल-परसों इसे धूलि बनकर उड़ जाना है। तब जो संपदा, प्रयोग सामग्री, पद, परिस्थिति उपलब्ध है, उस पर अपना स्वामित्व जमाने का क्या हक।

इनसे अनावश्यक ममता जोड़कर ऐसा कुछ न किया जाए, जिससे अनुचित पापकर्मों में संलग्न होना पड़े। यह विवेक हमें रात को सोते समय जाग्रत करना चाहिए और अनुभव करना चाहिए कि अहंता और ममता के बंधन

तोड़कर एकात्मभाव से भगवान की मंगलगोद निद्रामृत्यु में परम शांति और संतोषपूर्वक निमग्न हुआ जा रहा है। इस प्रकार की मनोभूमि का विकास होने से जीवन के अनेक क्षेत्रों में प्रगति होने की संभावना रहती है। इस प्रकार की भावना बनी रहने से मनुष्य माया-मोह के हानिकारक बंधनों से अधिकांश में विमुक्त रहता है और आत्मोद्धार का वास्तविक लक्ष्य उसकी दृष्टि से ओझल नहीं होने पाता।

इस प्रकार जो साधक जीवन के वास्तविक लक्ष्य को हस्तगत कर लेता है, उसे फिर व्यर्थ के जंजाल में नहीं फँसना पड़ता और फिर किसी दिन सचमुच ही मृत्यु आ जाए तो इन परिपक्व वैराग्य भावनाओं के आधार पर बिना भय और उद्वेग के शांतिपूर्वक विदा होते हुए मरणोत्तर जीवन में शांति का अधिकारी बना जा सकता है। ❑

सेवाधर्म के उपासक महात्मा ईसामसीह अक्सर ही गरीबों और दीन-दुखियों के पास चले जाते, उनकी सेवा-शुश्रूषा किया करते और उनकी तकलीफें दूर करते। कभी-कभार ऐसा भी होता कि उनसे मिलने-जुलने वाले लोगों को लेकर शिष्यों के मन में सवाल उठते, किंतु वे सभी उसे यथोचित समझकर टाल जाते। एक दिन महात्मा ईसामसीह ने किसी वेश्या का निमंत्रण स्वीकारा और उसके घर भोजन करने को गए। सारा शिष्य समुदाय भी उनके साथ चल पड़ा। चारों ओर कानाफूसी चल पड़ी कि ये ईश्वर के कैसे बेटे हैं, जो वेश्या से घृणा तक नहीं करते हैं। महात्मा ईसामसीह के शिष्यों में धनाढ्य और संपन्न लोग भी थे, जिनमें कुछ मुखर और वाचाल थे। शिष्य सिमोन मुखर तो थे, परंतु वाचाल नहीं। वे अपनी बात साफ-सुथरे ढंग से सामने रखते। समाज की दृष्टि में उपेक्षित अवस्था में रह रही एक वेश्या का निमंत्रण स्वीकार करने का महात्मा ईसामसीह का यह आचरण सिमोन को उचित नहीं लगा, जिस पर आपत्ति जताते हुए सिमोन व्यग्र हो महात्मा ईसामसीह से कहने लगे—"उद्धार ही करना है, तो सज्जन ही क्या कम हैं, जो आप दुर्जनों के यहाँ जाते हैं और बदनामी सहते हैं ?"

महात्मा ईसामसीह ने उलटकर पूछा—"सिमोन! यदि तुम चिकित्सक होते, तो किसी रोगी या चोट खाए घायल व्यक्ति की परवाह करते ? तुम्हारा विवेक ऐसी स्थिति में तुम्हें क्या करने को प्रेरित करता ?" सिमोन ने रोगी और घायल व्यक्ति को महत्त्व देना ज्यादा जरूरी बताया। महात्मा ईसामसीह ने सिमोन को लक्ष्य करते समस्त शिष्यों से पूछा—"यदि मैं अधिक पापी को सुधारने के लिए कम अपराधी की तुलना में प्राथमिकता देता हूँ, तो उसमें क्या भूल हुई ?" यह सुन वेश्या भावविभोर हो उठी। दूसरे दिन उसने श्रेष्ठ पथ का अनुगमन करना स्वीकार किया।

आध्यात्मिक पत्रकारिता व्यापक रूप ले

आज पत्रकारिता एवं मीडिया की भूमिका सर्वविदित है। प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक एवं वेब माध्यम के रूप में इसका स्वरूप बहुआयामी है, जो जीवन के हर क्षेत्र को गहराई से प्रभावित कर रहा है। क्या बच्चा, क्या बूढ़ा, क्या युवा, क्या नारी, क्या प्रौढ़, क्या पढ़ा-लिखा और क्या अनपढ़—सभी इसके प्रभाव में हैं। समाज के प्रहरी, लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में मीडिया की भूमिका सर्वविदित है।

जनता तक नई सूचना पहुँचाना तथा उसे सही जानकारी उपलब्ध कराना इसका कार्य है। इसके साथ यह जनमत का निर्माण करता है और जनता की सोच को गहराई से प्रभावित करता है। आजादी के दौर में जनता के बीच स्वतंत्रता की अलख जगाने व उन्हें स्वतंत्रता संग्राम के लिए तैयार करने में पत्रकारिता ने ऐतिहासिक भूमिका निभाई थी, किंतु कालक्रम के साथ इसके मिशनरी जज्बे का अवसान हुआ है।

जिस आदर्शनिष्ठ, मूल्य-आधारित पत्रकारिता के मानक इसने स्थापित किए थे, वे आजादी के बाद क्रमशः पृष्ठभूमि में चले गए। आज पत्रकारिता एक व्यवसाय बन चुका है। बड़े-बड़े कॉरपोरेट घराने, राजनीतिक दलों व निहित स्वार्थों में यह बँटा हुआ है। यदि यह लोक-कल्याण के भाव से चलता है तो इस व्यवसाय में भी कोई खराबी नहीं है।

जनता का व्यापक हित जब नजरअंदाज हो जाता है और नकारात्मक, सनसनाहट भरी, भ्रामक एवं कुत्सित सामग्री परोसने का यह माध्यम बन जाता है तो विषय चिंता का हो जाता है; क्योंकि जनसंचार के माध्यम मात्र व्यक्ति को सूचना भर नहीं देते, बल्कि ये व्यक्ति के चिंतन, चरित्र एवं स्वभाव को भी प्रभावित करते हैं और वातावरण का निर्माण भी करते हैं।

वास्तव में आज हम मूल्यों के गंभीर संकट से होकर गुजर रहे हैं। लोकतंत्र का कोई भी स्तंभ इससे अछूता नहीं है। व्यापक स्तर पर नैतिक पतन, वैचारिक प्रदूषण एवं आस्था संकट—आज के सत्य हैं। लोकतंत्र के सजग प्रहरी एवं एक सशक्त स्तंभ के रूप में पत्रकारिता क्षेत्र में मूल्यों का अवमूल्यन एवं अवसान एक गंभीर चिंता का विषय बन गया है और इन मूल्यों के संकट के समाधान की बात जब उठती है तो आध्यात्मिक स्तर पर इसके उपचार पर विचार अभीष्ट हो जाता है।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव की दृष्टि से देखें तो प्रस्तुत समस्याओं के समाधान की तलाश में तमाम प्रयास निष्फल क्यों हो रहे हैं? गहराई से विचार करें तो स्पष्ट होता है कि प्रयास की दिशा सही नहीं है। जीवन की समग्र समझ एवं दृष्टि के अभाव में समस्या की जड़ तक हम नहीं जा पा रहे हैं। फलतः जो प्रयास हो रहे हैं, वे जड़ को सींचने के बजाय फूल-पत्तियों और तने को पानी देने जैसे आधे-अधूरे सिद्ध हो रहे हैं।

अधिकांशतः अँधेरे को अँधेरे से दूर करने के निष्फल प्रयास चल रहे हैं। ऐसे में युगऋषि के शब्दों में अंधकार में प्रकाश उत्पन्न करने वाली ज्योति अध्यात्म क्षेत्र में ही उत्पन्न होने की आशा शेष रह गई है। परमपूज्य गुरुदेव इस विषय में लिखते हैं कि जीवन के क्षेत्र में तथा संसार में समस्याओं के आकार-प्रकार अनेक दिखाई पड़ते हैं, उनके कारण भी पृथक-पृथक दिखाई पड़ते हैं, पर उनके मूल में एक ही कारण है—अध्यात्मवादी दृष्टिकोण का अभाव।

यदि इस तथ्य को समझ लिया जाए तो असंख्य समस्याओं का, अगणित संकटों का समाधान एक ही उपाय से कर सकना संभव हो जाएगा। यदि हम जीवन की उलझनें सुलझाना चाहते हैं, समस्याओं का हल पाना चाहते हैं तो आध्यात्मिक रीति-नीति को अपनाने का साहस हमें जुटाना ही चाहिए। इसी पथ पर चलते हुए सच्चा आनंद और सच्चा लाभ लिया जा सकता है।

अध्यात्म को साथ लिए बिना किए गए प्रयासों की संपूर्ण सफलता संदिग्ध ही बनी रहेगी। कहना न होगा कि वर्तमान की समस्त समस्याओं का समाधान और सुखी जीवन का एक ही उपाय है कि हमारी आस्थाएँ बदलें, उनमें उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश हो और उसका प्रतिफल व्यक्तित्व में बढ़ते हुए देवत्व के रूप में परिलक्षित

हो। यदि हम अध्यात्मवादी रीति-नीति अपना सके तो निश्चित रूप से अनेकानेक प्रस्तुत समस्याओं का समाधान पा सकते हैं।

इस पृष्ठभूमि में पत्रकारिता के क्षेत्र में अध्यात्म का समावेश महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आश्चर्य नहीं कि परमपूज्य गुरुदेव ने युग निर्माण आंदोलन के अंतर्गत विचारक्रांति के उपकरण के रूप में सन् 1940 के दशक में ही अखण्ड ज्योति पत्रिका के माध्यम से आध्यात्मिक पत्रकारिता का श्रीगणेश कर दिया था। जिसका प्रकाशपूर्ण प्रवाह अनवरत रूप से आज तक जारी है।

अध्यात्म की आवश्यकता एवं महत्त्व को देखते हुए देश के जनमाध्यमों में भी इसके प्रयोग 20वीं सदी के अंतिम दशकों में प्रारंभ हो गए थे। रामायण-महाभारत जैसे धार्मिक-आध्यात्मिक सीरियलों का चलन शुरू हुआ, जिनकी अपार लोकप्रियता को देखते हुए लगभग हर टीवी चैनल पर फिर ऐसे सीरियलों की शुरुआत हुई, जो आज तक जारी है।

20वीं सदी के अंतिम दशकों में समाचारपत्रों में अध्यात्म पर नियमित स्तंभ और फिर साप्ताहिक पृष्ठ एवं परिशिष्टों का चलन शुरू हुआ। 21वीं सदी के पहले दशक में धर्म-अध्यात्म को लेकर भक्ति चैनलों की बाढ़-सी आई, जिनकी संख्या इस समय चार दर्जन के लगभग है। इसके बाद वेब माध्यम का दौर शुरू हुआ, जिसको विविध प्लेटफार्मों पर आध्यात्मिक सामग्री के विस्फोट के रूप में देखा जा सकता है।

आध्यात्मिक पत्रिकाएँ तो इस दिशा में बहुत पहले से ही सक्रिय थीं। इस समय इनकी संख्या भी बढ़ी-चढ़ी है। हर आध्यात्मिक संस्थान की अपनी आध्यात्मिक पत्रिका है। इनका योगदान व्यक्ति, परिवार एवं समाज के नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान तथा परिष्कार में उल्लेखनीय रहा है। कितने सारे छोटे-बड़े सृजनात्मक आंदोलन इनके इर्द-गिर्द खड़े हुए हैं। वस्तुत: आध्यात्मिक पत्रकारिता की संभावनाएँ असीम हैं।

युगमनीषियों का तो यहाँ तक कहना है कि आध्यात्मिक पत्रकारिता नए युग का सूत्रपात कर सकती है। आध्यात्मिक पत्रकारिता नए युग का प्रारंभ बन सकती है। पत्रकारिता में बड़ी-से-बड़ी क्रांति जो होगी वह है, अगर इस देश में एक अलग किस्म की पत्रकारिता पैदा हो सके, जो राजनीति के द्वारा नियंत्रित न हो, देश के प्रज्ञावान लोगों द्वारा प्रेरित हो।

पत्रकारिता का यह एक मूलभूत कार्य रहेगा कि जनता के सामने प्रज्ञावान लोगों को और उनकी प्रज्ञा को प्रकट करे। आध्यात्मिक पत्रकारिता से जुड़ी महान संभावनाओं के बावजूद अभी मुख्य धारा की पत्रकारिता में इसे उचित स्थान देने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। अभी भी वहाँ यह एक उपेक्षित विधा है। इसको लेकर विचारशील एवं मनीषी वर्ग के बीच भी अजीब-सा मौन पसरा है।

अकादमिक स्तर पर भी यह एक हाशिए का विषय है। यदि यहाँ इसे उचित स्थान देकर इसके प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सके तो पत्रकारों की एक नई पीढ़ी तैयार की जा सकती है, जो अपने सकारात्मक विचारों, सात्त्विक

सुखी और संतुष्ट रहने का मूलमंत्र है— स्वल्प इच्छाएँ, कम आवश्यकताएँ, निस्स्वार्थ जीवन और आस्थापूर्ण आस्तिक दृष्टिकोण का विकास।

प्रभाव एवं वैचारिक प्रखरता के आधार पर मुख्य धारा की पत्रकारिता में नए संस्कारों का संचार कर सकती है।

इसकी सामयिक आवश्यकता एवं महत्त्व को देखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग में विगत दिनों एक अभिनव पहल की गई है। विभाग के द्वारा आगामी सत्र में आध्यात्मिक पत्रकारिता को शिक्षण एवं शोध के विषय के बतौर पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। इसके साथ ही आध्यात्मिक पत्रकारिता विषय पर पी-एच.डी. शोध से लेकर पुस्तक रचना का कार्य जारी है।

इस सत्र से स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में इसको पढ़ाया जा रहा है। आशा है कि इसके साथ आध्यात्मिक दृष्टि से संपन्न पत्रकारों एवं विचारकों की एक नई पीढ़ी का निर्माण हो सकेगा। जिसका प्रसार आगे चलकर देश के अन्य विश्वविद्यालयों, शैक्षणिक संस्थानों एवं पत्रकारिता विभागों में भी होगा। आध्यात्मिक पत्रकारिता में कुछ सीखने, शोध करने व प्रशिक्षण के इच्छुक सुपात्र विद्यार्थियों का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्वागत है। ❑

अधिकारों की स्वतंत्रता के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान परिस्थितियों की समीक्षा

आधुनिक समय की महत्त्वपूर्ण देनों में से एक देन मानवीय स्वतंत्रता की है। सूचना के अधिकार से लेकर मानवाधिकार, समानता के अधिकार से लेकर शिक्षा के अधिकार पर चर्चा करते हुए अनेकों नजर आते हैं। ऐसा माना जाता रहा है कि मनुष्य के मूलभूत अधिकारों में से एक अधिकार हमारी स्वतंत्रता है और यह सही भी है।

अधिकारों की इसी स्वतंत्रता के कारण राजनीतिक नेतृत्व बदल जाते हैं, अर्थव्यवस्थाएँ परिवर्तित हो जाती हैं और जीवनोद्देश्य भी बदल जाते हैं। वैयक्तिक स्वतंत्रता मानवाधिकारों की रीढ़ कही जा सकती है और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक बार इस स्वतंत्रता के अंतर्निहित पक्षों की विवेचना आवश्यक हो जाती है।

यदि आज के वैश्विक परिदृश्य को देखें तो हम पाएँगे कि अधिकांश स्थानों पर स्वतंत्रता का अर्थ अधिकारों की स्वतंत्रता से लगाया जाता है, पर जब इसी स्वतंत्रता के कारण अपेक्षित परिणाम निकलकर नहीं आते तो उस संदर्भ में शिकायतें करते अनेक लोग अक्सर देखे जाते हैं।

उदाहरण के तौर पर, जब इंग्लैंड—यूरोपियन यूनियन में रहे या न रहे, इस विषय पर तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश जनता के मध्य रेफरेण्डम करवाया और उसमें लोगों ने अपनी भावना इस आशय के साथ व्यक्त की कि वे यूरोपियन यूनियन से ब्रेक्सिट के रूप में बाहर निकलना चाहते हैं तो उस समय अनेक लोग, अधिकारों की इस स्वतंत्रता पर प्रश्नचिह्न लगाते दिखे।

प्रसिद्ध जीव विज्ञानी रिचर्ड डॉकिन्स ने तो यहाँ तक कहा कि ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर जनता की राय माँगने से पहले या उनको यह अधिकार देने से पहले उनकी बुद्धिमता की और उनकी इस विषय विशेष में विशेषता की जाँच करा लेनी आवश्यक हो जाती है। अनेक लोगों ने इस बिंदु का समर्थन किया कि अधिकारों की स्वतंत्रता देने से पहले यह जाँच लेना जरूरी है कि जिनको ये अधिकार दिए जा रहे हैं क्या वे उस क्षेत्र में सक्षम निर्णय ले पाने की उचित एवं निर्धारित योग्यता रखते हैं या नहीं?

उदाहरण के तौर पर चुनाव-प्रक्रिया के समय यदि वोटर को यह पता न हो कि जिस विषय पर चुनाव लड़ा जा रहा है, उसके सभी पक्ष क्या और कौन से हैं तो क्या वो सही व्यक्ति को वोट कर पाएँगे। सत्य तो यह है कि अधिकतर लोग वोट डालते समय भावना का प्रयोग करते हैं, यह देखते हैं कि उनका हृदय किस ओर झुकता है, न कि यह कि राष्ट्रीय नीतियों के परिप्रेक्ष्य में किसका चयन अर्थव्यवस्था से लेकर उन सभी बिंदुओं पर जरूरी होगा। आज की जो वैज्ञानिक शोधें हैं, वे इस ओर इशारा करती हैं कि वस्तुतः भावनाएँ भी एक तरह का क्रम हैं, जिन्हें यदि ढंग से जान लिया जाए तो उनको भी अपेक्षित दिशा दे पाना सहजता से संभव हो जाता है।

आज के परिप्रेक्ष्य में इस विषय पर चिंतन अत्यंत आवश्यक हो जाता है; क्योंकि आज अनेक लोग वैश्विक समस्याओं के समाधान भावनात्मक आधार पर देते नजर आते हैं; जबकि यह विषय एक विश्लेषणात्मक दिशा-निर्देश माँगता है। आवश्यकता ऐसे ही प्रयासों की है। ❑

तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य॥

—तैत्तिरीयोपनिषद्

अर्थात जहाँ से मन सहित वाणी आदि इंद्रियाँ उसे पाकर लौट आती हैं, उस ब्रह्मानंद को जानने वाला पुरुष सदा निर्भय है।

5 सितंबर, शिक्षक दिवस पर

महान शिक्षक सर्वपल्ली राधाकृष्णन

प्रसिद्ध विचारक मैथ्यू आर्नोल्ड ने कहा था कि विश्व के सर्वोत्कृष्ट कथनों और विचारों का ज्ञान ही संस्कृति है। यह कथन ऋषियों की परंपरा में जन्मे सर्वपल्ली राधाकृष्णन पर सर्वथा चरितार्थ होता है। उन्हीं की स्मृति में भारत में सन् 1962 से 5 सितंबर को 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाया जाता रहा है।

इसी दिन महान शिक्षाविद् और भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन का जन्म सन् 1888 को दक्षिण भारत के थिरुत्तनि नामक स्थान में हुआ था। राधाकृष्णन ने भारत के शिक्षा क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान दिया है। उनका मानना था कि एक शिक्षक का मस्तिष्क देश में सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क होता है।

एक बार डॉ० राधाकृष्णन के कुछ छात्रों और मित्रों ने उनसे कहा कि वे उनका जन्मदिन मनाना चाहते हैं। इसके जवाब में डॉ० राधाकृष्णन ने कहा कि मेरा जन्मदिन अलग से मनाने के बजाय इसे 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाया जाए तो मुझे गर्व अनुभव होगा। इसके पश्चात सन् 1962 से पूरे भारत में 5 सितंबर को शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाने लगा।

इस दिन हम इस महान शिक्षाविद् को याद करते हैं और अपने उन सभी शिक्षकों को सम्मान एवं आदर देते हैं, जिन्होंने हमारी जिंदगी में ज्ञान के दीपक को प्रज्वलित किया है। डॉ० राधाकृष्णन कहा करते थे कि मात्र जानकारियाँ देना ही शिक्षा नहीं है। यद्यपि जानकारी का अपना महत्त्व है और आधुनिक युग में तकनीकी की जानकारी महत्त्वपूर्ण भी है तथापि व्यक्ति के बौद्धिक झुकाव और उसकी लोकतांत्रिक भावना का भी बड़ा महत्त्व है।

ये बातें व्यक्ति को एक उत्तरदायी नागरिक बनाती हैं। शिक्षा का लक्ष्य है—ज्ञान के प्रति समर्पण की भावना और निरंतर सीखते रहने की प्रवृत्ति। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को ज्ञान और कौशल दोनों प्रदान करती है तथा इनका जीवन में उपयोग करने का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

करुणा, प्रेम और श्रेष्ठ परंपराओं का विकास भी शिक्षा का उद्देश्य है। राधाकृष्णन कहते थे कि जब तक शिक्षक शिक्षा के प्रति समर्पित और प्रतिबद्ध नहीं होता और शिक्षा को एक मिशन नहीं मानता, तब तक श्रेष्ठ शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती है।

उन्होंने अनेक वर्षों तक अध्यापन किया। एक आदर्श शिक्षक के सभी गुण उनमें विद्यमान थे। उनका कहना था कि शिक्षक उन्हीं लोगों को बनाया जाना चाहिए, जो सबसे अधिक बुद्धिमान हों। शिक्षक को मात्र अच्छी तरह अध्यापन करके ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, बल्कि उसे अपने छात्रों का स्नेह और आदर भी अर्जित करना चाहिए। शिक्षक होने मात्र से सम्मान नहीं मिलता, वरन उसे अर्जित करना पड़ता है।

डॉ० राधाकृष्णन ने जिस परिवार में जन्म लिया, वह एक ब्राह्मण परिवार था। उनका जन्मस्थान भी एक पवित्र तीर्थस्थल के रूप में विख्यात है। राधाकृष्णन के पूर्वज पहले कभी 'सर्वपल्ली' नामक ग्राम में रहते थे और 18वीं शताब्दी के मध्य में उन्होंने थिरुत्तनि ग्राम की ओर प्रस्थान किया था, लेकिन उनके पूर्वज चाहते थे कि उनके नाम के साथ उनके जन्मस्थल के ग्राम का बोध भी सदैव बना रहना चाहिए।

इसी कारण उनके परिजन अपने नाम के पूर्व 'सर्वपल्ली' लगाने लगे थे। राधाकृष्णन का बाल्यकाल थिरुत्तनि एवं तिरुपति जैसे धार्मिक स्थलों पर ही व्यतीत हुआ। उन्होंने जीवन के प्रथम आठ वर्ष थिरुत्तनि में ही गुजारे थे। उनके पिता पुराने विचारों के थे और उनमें धार्मिक भावनाएँ भी थीं, इसके बावजूद उन्होंने राधाकृष्णन को क्रिश्चियन मिशनरी संस्था लूथरन मिशन स्कूल, तिरुपति में सन् 1896-1900 के मध्य विद्याध्ययन के लिए भेजा। फिर अगले 4 वर्ष सन् 1900 से 1904 तक की उनकी शिक्षा वेल्लूर में हुई।

इसके बाद उन्होंने मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज, मद्रास में शिक्षा प्राप्त की। वे बचपन से ही मेधावी थे। इसलिए उन्हें विशिष्टयोग्यता का सम्मान प्रदान किया गया। इस उम्र में उन्होंने वीर सावरकर और स्वामी विवेकानंद का भी अध्ययन किया था।

उन्होंने सन् 1902 में मैट्रिक स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की और उन्हें छात्रवृत्ति भी प्राप्त हुई। इसके बाद उन्होंने सन् 1904 में कला संकाय की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उन्हें मनोविज्ञान, इतिहास और गणित विषय में विशेषयोग्यता की टिप्पणी भी उच्च प्राप्तांकों के कारण मिली। इसके अलावा क्रिश्चियन कॉलेज, मद्रास ने उन्हें छात्रवृत्ति भी दी। दर्शनशास्त्र में एम०ए० करने के पश्चात सन् 1916 में वे मद्रास रेजीडेंसी कॉलेज में दर्शनशास्त्र के सहायक प्राध्यापक नियुक्त हुए। डॉ० राधाकृष्णन ने अपने लेखों और भाषणों के माध्यम से विश्व को भारतीय दर्शनशास्त्र से परिचित करवाया। सारे विश्व में उनके लेखों की प्रशंसा की गई।

शिक्षा का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर निश्चित रूप से पड़ता है और शैक्षिक संस्थान की गुणवत्ता भी अपना प्रभाव छोड़ती है। ईसाई संस्थाओं द्वारा उस समय पश्चिमी जीवनमूल्यों को विद्यार्थियों के भीतर काफी गहराई तक स्थापित किया जाता था। यही कारण है कि वहाँ अध्ययन करते हुए राधाकृष्णन का चिंतन पाश्चात्य हो चला था। कुछ लोग उनके इन विचारों को हेय दृष्टि से देखते थे और उनकी आलोचना करते थे। उनकी आलोचना को डॉ० राधाकृष्णन ने चुनौती की तरह लिया और हिंदू आर्षग्रंथों का गहरा अध्ययन करना आरंभ कर दिया। डॉ० राधाकृष्णन यह जानना चाहते थे कि वस्तुत: किस संस्कृति के विचारों में चेतनता और किस संस्कृति के विचारों में जड़ता है ?

स्वाभाविक अंतर्प्रज्ञा द्वारा उन्होंने इस बात पर दृढ़ता से विश्वास करना आरंभ कर दिया कि भारत के दूरस्थ स्थानों पर रहने वाले गरीब तथा अनपढ़ व्यक्ति भी प्राचीन सत्य को जानते थे। इस कारण राधाकृष्णन ने तुलनात्मक रूप से यह जान लिया कि भारतीय अध्यात्म काफी समृद्ध है और ईसाई मिशनरियों द्वारा भारतीय संस्कृति की आलोचनाएँ निराधार हैं।

इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय संस्कृति धर्म, ज्ञान और सत्य पर आधारित है, जो मनुष्य को एक अच्छा जीवन जीने का सच्चा संदेश देती है। डॉ० राधाकृष्णन ने यह भली भाँति जान लिया था कि जीवन अत्यंत अल्प है, परंतु इसमें व्याप्त आनंद अनंत है। इस कारण व्यक्ति को सुख-दु:ख में समभाव से रहना चाहिए। वस्तुत: मृत्यु एक अटल सच्चाई है, जो अमीर-गरीब सभी को अपना ग्रास बनाती है तथा किसी से किसी प्रकार का वर्गभेद नहीं करती है।

सच्चा ज्ञान वही है, जो हमारे अंदर के अज्ञान को समाप्त करे। सादगीपूर्ण संतोषवृत्ति का जीवन अमीरों के अहंकारी जीवन से बेहतर है, तालियों की उन गड़गड़ाहटों से भी बेहतर है, जो संसदों एवं दरबारों में सुनाई देती हैं। इसी कारण डॉ० राधाकृष्णन भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों को समझ पाने में सफल रहे।

वे जानते थे कि सभी माताएँ अपने बच्चों में उच्च संस्कार देना चाहती हैं। इसी कारण वे बच्चों को ईश्वर पर विश्वास रखने, पाप से दूर रहने एवं कठिनाइयों में फँसे लोगों की सहायता करने का पाठ पढ़ाती हैं। डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने यह भी जाना कि भारतीय संस्कृति में सभी धर्मों का आदर करना सिखाया गया है और सभी धर्मों के लिए समता का भाव भी भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान है।

इस प्रकार उन्होंने भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान को समझा और उसको अपने अंदर आत्मसात् किया। डॉ० राधाकृष्णन समूचे विश्व को एक विद्यालय के समान मानते थे। उनका मानना था कि शिक्षा के द्वारा ही मानव मस्तिष्क का सदुपयोग किया जा सकता है। अत: विश्व को एक समान इकाई मानकर शिक्षा का प्रबंधन करना चाहिए।

ब्रिटेन के एडिनबरो विश्वविद्यालय में दिए अपने भाषण में डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था—"मानव समुदाय को एक होना चाहिए। मानव इतिहास का संपूर्ण लक्ष्य मानव जाति की मुक्ति है; यह तभी संभव है, जब देशों की नीतियों का आधार पूरे विश्व में शांति की स्थापना करना हो।

डॉ० राधाकृष्णन अपनी बुद्धि से परिपूर्ण व्याख्याओं, आनंददायी अभिव्यक्तियों और प्रेरणाप्रद कहानियों से छात्रों को मंत्रमुग्ध कर देते थे। उच्च नैतिक मूल्यों को अपने आचरण में उतारने की प्रेरणा वे अपने छात्रों को देते थे। वे जिस भी विषय को पढ़ाते थे, पहले स्वयं उसका गहन अध्ययन करते थे। दर्शन जैसे गंभीर विषय को भी वे अपनी शैली से सरल, रोचक और प्रिय बना देते थे। वे एक ऐसे महापुरुष थे, जिनमें हम समूचा मानव समाज, संस्कृति, विचार, जीवन दर्शन और आस्थाओं को देख सकते हैं। ❑

संज्ञा की सौम्यता से शांत हुए सूर्यदेव

संध्या का समय था। जगत् को प्रकाशित करने हेतु बिखरी किरणों को धीरे-धीरे समेटते परम तेजस्वी, रक्तवर्ण मुखारविंद सूर्यदेव अपने घर पहुँचे। कक्ष में प्रवेश करते ही उनके प्रचंड स्वरूप को देख पत्नी संज्ञा ने अपनी आँखें बंद कर लीं। संज्ञा के इस संकुचित व्यवहार से कुपित होकर सूर्यदेव बोले—''क्यों! तुम्हें मेरा तेजस्वी रूप रुचता नहीं?'' स्वामी के इन कठोर वचनों के प्रहार से संज्ञा सहम गई और उसकी आँखें और भी नीची हो गईं।

भय से संज्ञा ने बादलों के घूँघट में अपना कोमल मुख ढक लिया। बारंबार किए गए आग्रह के उपरांत भी निरुत्तर अवस्था में खड़ी संज्ञा की यह अभद्रता सूर्यदेव को और भी अधिक अखरी तथा वे संज्ञा के इस उपेक्षित व्यवहार पर अत्यंत क्रोधित हो उसे अपना दर्प दिखाने लगे। स्वामी द्वारा प्रदर्शित इस प्रचंड आक्रोश से आतंकित हो संज्ञा अपने पितृगृह कुरुप्रदेश चली गई। संज्ञा को अपने पतिदेव सूर्य के बिना असमय घर आते देख पिता हतप्रभ थे। उन्होंने पुत्री से कुशलक्षेम पूछते हुए कहा—''पुत्री संज्ञा! क्या बात है? तुम दु:खित लग रही हो।''

संज्ञा ने पति-पत्नी के संबंधों की शालीनता का मान रखकर परिवार के आंतरिक मामलों को पिता के समक्ष उजागर करना उचित न समझा व चुप्पी साधे खड़ी रही। वह कुछ क्षण उपरांत धीरे से बुदबुदाती हुई पिता से कहने लगी—''कोई विशेष बात नहीं है पिताश्री! बस, आपसे यों ही मिलने चली आई।'' पुत्री संज्ञा के मुखमंडल पर खिंची दु:ख की रेखाएँ स्पष्ट दिख रही थीं। सब कुछ देखते हुए भी संज्ञा के पिता ने यही उचित समझा कि संभवत: उसे एकांत की आवश्यकता है। अत: वे उसे एकांत प्रदान कर वहाँ से चले गए।

कुछ दिनों तक बीते घटनाक्रम को याद करती संज्ञा दु:खी होती। नित्य छिपकर अपने आराध्य सूर्यदेव को देखती व परखती कि कदाचित् स्वभाव की प्रचंडता में कहीं कोई परिवर्तन आया हो, परंतु सूर्यदेव के तेज की प्रचंडता को यथास्थिति देख वह निराश हो जाती। दीर्घकाल की प्रतीक्षा के उपरांत अंतत: उसने निश्चय किया कि अब वह इस प्रकार दु:खित न बैठी रहेगी, वरन स्वामी के उग्र स्वभाव में बदलाव हेतु महादेव से प्रार्थना करेगी। संज्ञा भोर में उठकर पिता के घर से दूर किसी ऊँचे पर्वत की एकांत कंदरा के मध्य विराजकर तपस्या में तल्लीन हो गई।

संज्ञा की अनुपस्थिति में जीवन गुजारते सूर्यदेव की उग्रता में अब कमी आने लगी। वे उदास रहने लगे। आत्मनिरीक्षण के क्रम में बीते दिनों घटित हुई घटना का वे जब कभी विश्लेषण करते तब यह नहीं समझ पाते कि सहनशील संज्ञा से मेरी इतनी-सी सख्ती आखिर क्यों न सही गई, जिसने उसे इस प्रकार रुष्ट होकर पिता के पास चले जाने के लिए विवश कर दिया। आत्मग्लानि से पीड़ित सूर्यदेव स्वयं को कोसते दिन काट रहे थे। प्राणप्रिय धर्मपत्नी संज्ञा के बिना समय गुजारना उन्हें बड़ा कठिन मालूम होता।

प्रात:काल उदीयमान होने से सायंकाल अस्त होने तक का पथ उन्हें अत्यंत लंबा प्रतीत होता। जिसके उपरांत कक्ष का वीरानापन उन्हें काटने को दौड़ता। वे रात्रिजागरण करते संज्ञा की यादों में डूबे रहते थे। दांपत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच भिन्न विषयों पर विसंगतियाँ अक्सर हो ही जाया करती हैं। जीवनयात्रा साथ तय करने के निश्चय से आगे आए दोनों ही प्राणियों के लिए गृहस्थ का यह पड़ाव बिलकुल नया होता है, किंतु आपसी समझ व तालमेल के द्वारा जीवनपथ अधिक सुगमता से तय किया जा सकता है।

सूर्यदेव-संज्ञा के बीच हुआ करती नोक-झोंक में कितनी ही बार सूर्यदेव ने रूठ जाती संज्ञा को मनाया था, किंतु आज तक बात इस स्थिति पर नहीं पहुँची थी कि संज्ञा घर छोड़कर चली जाए। सूर्यदेव को संज्ञा के उठाए इस कठोर कदम की ही चिंता सताए जा रही थी। संज्ञा के इस अप्रत्याशित व्यवहार ने सूर्यदेव के सामने एक अनबूझ पहेली रख छोड़ी थी; जिसे सुलझाते वे प्राय: असफल ही रहते। थक-हारकर उन्होंने तय किया कि वे स्वयं संज्ञा के पिता से उसकी मनोदशा का पता लगाएँगे। बड़ी आस लिए सूर्यदेव संज्ञा के पिता से उसकी खोज-खबर लेने पहुँचे। पिता ने पलटकर वस्तुस्थिति सूर्यदेव से जाननी चाही।

एकमात्र आशा की किरण बने पिता से भी सूर्यदेव को निराशा हस्तगत हुई। अंतत: उन्होंने स्वयं ही संज्ञा की खोज आरंभ की। नदी-वन से लेकर पर्वत आदि सभी जगह अपनी किरणें बिखेरते सूर्यदेव संज्ञा का पता लगाने लगे। अस्ताचल होते सूर्यदेव के कानों में अकस्मात् किसी स्त्री के मधुर स्वर पड़े। स्वरों में मंत्राक्षर गुँथे हुए थे। जिसमें आदिदेव-महादेव की स्तुति व प्रार्थना के भाव उत्पन्न हो स्पंदित हो रहे थे।

सूर्यदेव इस ध्वनि को ध्यानपूर्वक सुनते-पहचानते चौंक पड़े। वे तत्क्षण समझ गए कि यह तो प्रिय संज्ञा की सुमधुर पुकार है। वे तत्काल पर्वत की कंदरा की ओर व्यग्रता से देखने लगे। संज्ञा एकनिष्ठ भाव से वहाँ महादेव की स्तुति में लीन थी। सूर्यदेव तत्क्षण संज्ञा से क्षमा-याचना का मन बनाने लगे।

कल्पना में डूबे सूर्यदेव मन-ही-मन कह उठे—प्राणप्रिये! अभद्र व्यवहार के लिए कृपया मुझे क्षमा करो और घर को पुन: लौट चलो। तुम तो जानती हो कि मेरे अस्तित्व की प्रचंडता स्वयं मुझे भी अधिक समय तक सहन नहीं होती। अत: अपने नित्य के कर्त्तव्य कर्म के उपरांत घर लौटने पर तुम्हारी शीतलता के बिना जीवन अधूरा-सा लगता है। प्रिये! पुन: मेरी जीवनसंगिनी बनकर मेरे जीवन को संपूर्ण कर मुझे कृतार्थ करो। कल्पनाओं में तैरते सूर्यदेव होश में आते ही स्वयं व संज्ञा को यथास्थान पाकर निराश हो गए।

हाल ही में कल्पना की आसमानी उड़ान उन्हें बड़ी सहज लगी थी, किंतु अब यथार्थ के धरातल पर संज्ञा का सामना कर पाना उन्हें असंभव जान पड़ रहा था; क्योंकि इन परिस्थितियों के लिए वे स्वयं दोषी थे। हिम्मत जुटाते सूर्यदेव ने संज्ञा की मनोदशा को जानने की योजना बनाई। एक योगी का रूप धारण कर वे संज्ञा के समक्ष पहुँचे एवं अपनी ओजस्वी वाणी का प्रयोग करते पूछने लगे—"देवी! तुम्हारी तपस्या का भला क्या प्रयोजन है?

"जिस देवी का स्वामी स्वयं परम तेजस्वी सूर्य हो, उसे भला इस भूलोक पर तप की अग्नि में स्वयं को तपाने की क्या आवश्यकता हो सकती है?" संज्ञा योगी के चरणों का वंदन करती प्रार्थना की मुद्रा में कहने लगी—"हे महात्मन्! मैं इस तथ्य से भली भाँति परिचित हूँ। इस सृष्टि के प्राणस्रोत मेरे स्वामी सूर्यदेव तपस्वी एवं परम तेजस्वी हैं। मुझ धन्यभागी की आजीवन ईश्वर से यही प्रार्थना होगी कि मेरे पति, तप के शिखर पर आसीन हो प्रखरता अर्जित करें, किंतु इसके साथ ही उनका स्वभाव इतना सरल-सौम्य हो कि मैं अपनी सजल आँखों से अपलक उनके दर्शन कर सकूँ।"

पत्नी संज्ञा के हृदय से उद्घाटित अंतर्व्यथा लिए यह उद्गार सुन सूर्यदेव द्रवित हो गए। सूर्यदेव तेज से उत्पन्न हुए इस अभिमान के दोष पर लज्जित हो योगी के उसी वेश में चुपचाप स्वधाम को लौट गए। दर्प की प्रचंडता को व्यर्थ मानते हुए उन्होंने अपनी सोलह कलाओं में से एक के साथ ही प्रकाशित होना आरंभ कर दिया। सूर्यदेव की कलाओं में हुए इस आकस्मिक परिवर्तन से प्रभावित संज्ञा, ईश्वर के इस उपकार के लिए कृतज्ञ हो उठी।

वह खुशी-खुशी पिता का आशीर्वाद लेकर सूर्यदेव के पास पुन: लौट आई और सूर्यदेव को सौम्य अवस्था में पाकर उनसे बोली—"नाथ! वैभव कितना ही क्यों न हो, स्नेह तो सौम्यता ही ढूँढ़ेगा और उसी में तृप्ति मानेगा।" सूर्यदेव ने संज्ञा से दर्प-प्रदर्शन के लिए क्षमा माँगी व सस्नेह संज्ञा का स्वागत-सत्कार किया। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

मन में ध्यान का दीप जला लें

गहन अँधेरे में चिराग के जलते ही अँधेरा अदृश्य हो जाता है और वहाँ प्रकाश प्रकट हो जाता है। वहाँ प्रकाश उतर आता है। वहाँ प्रकाश पसर जाता है। वहाँ अब से पूर्व अँधेरा-ही-अँधेरा था, पर प्रकाश के फैलते ही, प्रकाश के उतरते ही, प्रकाश के पसरते ही वहाँ सब कुछ बदल जाता है। वहाँ आस-पास की सारी चीजें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगती हैं।

आकाश के अनंत क्षितिज से सुनहली आभा व लालिमा लिए दिनमान के प्रकट होते ही, सूर्य के उदय होते ही अँधेरे का, तमस् का तिरोधान हो ही जाता है और एक नई सृष्टि का सृजन होने लगता है, एक नए प्रभात का आगमन होता है। पूरा जगत् सूर्य की सुनहली लालिमा से नहा उठता है। सारी सृष्टि चैतन्य हो उठती है। पक्षियों का कलरव शुरू हो जाता है। रंग-बिरंगे, सुगंधित पुष्प खिल उठते हैं और उनकी मधुर सुवास से, खुशबू से सारा जगत् महक उठता है।

वैसे ही ध्यान भी अचेतन मन के गहन अँधेरे में एक दीया जलाने के समान है। उस दीये की रोशनी का उद्देश्य अचेतन को रोशन करना है। हमारे अचेतन मन में हमारे जन्म-जन्मांतरों के अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि कर्मों के संस्कारों से बड़ा ही गहन, बड़ा ही सघन अँधेरा छाया है। खट्टे-मीठे अनुभवों की स्मृतियाँ, दमित इच्छाएँ, वासनाएँ, कामनाएँ आदि सभी हमारे अचेतन मन की भूमि में अभी भी दबी पड़ी हैं। इसलिए यहाँ अब तक अँधेरा-ही-अँधेरा है।

हमारे अचेतन के संस्कार में एक अदृश्य आकर्षण है। जो हमें अपनी ओर आकर्षित करता है। यह हमारे चिंतन-चरित्र और व्यवहार को नियंत्रित व प्रभावित करता है। यह हमें कठपुतली की तरह नचाता है। हमारे अचेतन के ये कर्म-संस्कार से अदृश्य बंधन हैं, जिनसे हम अदृश्य रूप से बँधे हैं। ये बंधन कामनाओं के हैं, ममता के हैं, आसक्ति के हैं। हम ईश्वर की ओर गमन करना चाहते हैं। हम आत्मा की ओर गमन करना चाहते हैं। हम परमात्मा की ओर गतिमान होना चाहते हैं, पर उस ओर हम बढ़ नहीं पाते। उस ओर हम एकाग्र नहीं हो पाते; क्योंकि ये बंधन हमें बार-बार उनकी ओर खींचते रहते हैं।

ये संस्कार दृश्यमान नहीं, वरन अदृश्य हैं, पर हैं बड़े ही बलशाली एवं बड़े ही प्रभावशाली। इसलिए तो इनके प्रभाव में आकर, इनके प्रलोभन में आकर, इनके आकर्षण में आकर बहुधा लोग इन संस्कारों से प्रेरित मार्ग पर ही चल पड़ते हैं। हम ईश्वर की उपासना के लिए बैठते हैं कि तभी हमारे चित्त की चंचलता हमें विचलित करने लगती है, हमें परेशान करने लगती है। हम ध्यान में बैठे नहीं कि हमारे चित्त के संस्कार, हमारे अचेतन के संस्कार सुनामी बनकर प्रकट हो जाते हैं और हमें विचलित करने लगते हैं और हमें ध्यान से उठाकर अतीत की स्मृतियों के बीच ला पटकते हैं। हमें कहीं दूर बहाकर ले जाते हैं।

ध्यान में बैठते ही मन में अच्छे-बुरे विचारों की एक अंतहीन शृंखला चल पड़ती है। हमारे ही द्वारा किए गए कर्मों के संस्कार हमें चारों ओर से घेर लेते हैं। इस घेरे से हम निकल भागना चाहते हैं और ध्यान में, भजन में, पूजा में, उपासना में उतरना चाहते हैं, पर उन संस्कारों के बीच हम स्वयं को प्राय: असहाय ही पाते हैं।

कई बार तो इन संस्कारों के प्रभाव में आकर, आकर्षण में आकर साधक की वर्षों की तपस्या, वर्षों की साधना भी स्खलित होते देखी व सुनी गई है और सत्य यह भी है कि जब तक हम अपने चित्त के संस्कारों से, अचेतन के संस्कारों से नियंत्रित हैं, तब तक हम चाह कर भी अपनी राह नहीं चल सकते। हमें लौट-लौटकर पुन: संस्कारों द्वारा रचित, संस्कारों द्वारा प्रेरित राह पर ही चलने को बाध्य होते रहना पड़ेगा। प्रश्न उठता है कि ऐसे में हम क्या करें ?

इसका एकमात्र उपाय है अपने अचेतन को, अपने चित्त को संस्कारमुक्त कर लेना, संस्कारशून्य कर लेना और इसे जड़ से ही समाप्त कर देना; नहीं तो जैसे सूखी हुई दूर्वा खाद-पानी पाते ही बारिश की हलकी फुहार पाकर पुन: हरी-भरी हो जाती है, पुन: उग आती है; वैसे ही यदि

अचेतन में, चित्त में, संस्कारों का लेशमात्र भी अवशेष रहा तो वर्षों की तप-साधना के बीच भी थोड़ा- सा खाद-पानी पाकर वे फिर से हरी-भरी हो सकती हैं, फिर से उग आ सकती हैं और हमें अतीत की स्मृतियों में, विचारों में, अनुभवों में भटकाकर, उलझाकर, लगाकर हमें हमारे साधना-पथ से दूर कर सकती हैं। इसलिए समाधिलाभ, भगवत्प्राप्ति जैसे परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चित्तवृत्तियों का पूर्णत: निरोध होना आवश्यक है।

इस हेतु चित्त का संस्कारशून्य होना, विचारशून्य होना, निर्विकार होना आवश्यक है और इस हेतु अचेतन की, चित्त की शल्यक्रिया किया जाना आवश्यक है। एक वृहद शल्यक्रिया के द्वारा ही चित्त को संस्कारमुक्त किया जाना संभव है, विचारशून्य किया जाना संभव है। योगसाधनों में ध्यान भी एक ऐसी ही शल्यक्रिया है, जिससे चित्त को विचारशून्य, संस्कारशून्य किया जाता है। जैसे ग्रीष्मकाल में सूर्य की तपन से, सूर्य की अग्नि से हरी-भरी दूर्वा जल जाती है, सूख जाती है, समाप्त हो जाती है; वैसे ही ध्यान की अग्नि से चित्त में, अचेतन में दमित, दफन व उगे हुए संस्कारों की पौध भी झुलस उठती है और चित्त संस्कारशून्य हो जाता है।

ध्यान में चेतन मन अचेतन में प्रवेश करता है, वैसे ही जैसे एक शल्यक्रिया विशेषज्ञ शल्य कक्ष में किसी रोगी की शल्यक्रिया करने हेतु प्रवेश करता है। वह शल्यक्रिया करने से पूर्व उस रोगी को सामान्य बनाए रखने के लिए उससे कुछ बातें करता है, फिर धीरे-धीरे उसे बेहोशी की स्थिति में ले जाता है और फिर उसके अंग विशेष की शल्यक्रिया कर उसे धीरे से रोगमुक्त करता है।

वैसे ही ध्याता ध्यान में स्वयं के अचेतन में प्रवेश करता है। अचेतन के संस्कारों का दिग्दर्शन करता है। वहाँ से उठ रहे विचारों को, प्रश्नों को, भावों को, संस्कारों को, कामनाओं को देखता है, पर उन्हें दबाता नहीं। उन्हें रोकता नहीं। उन्हें सहज साक्षीभाव से देखता जाता है, उसका निरीक्षण भर करता है। उन विचारों की, संस्कारों की जड़ें कितनी गहरी हैं—उन्हें देखता है, वह अपने अतीत के कर्मों को देखता है, उनकी स्मृतियों को, उनके अनुभवों को देखता है, पर साक्षीभाव से कर्त्ताभाव से नहीं।

वह अब उनमें लिप्त नहीं होता। उनसे प्रभावित नहीं होता। उनके प्रति आकर्षित नहीं होता। वह बार-बार ध्यान की अग्नि वहाँ छोड़ता है और उन संस्कारों को जड़सहित, मूलसहित जला डालता है, भस्मीभूत कर डालता है। चित्त के संस्कारशून्य होते ही, वह ध्यान की गहराई में उतरने लगता है; क्योंकि उसे अदृश्य रूप से नियंत्रित करने वाले कर्म-संस्कार अब वहाँ नहीं रहते। अचेतन से निस्सृत संस्कार रहे नहीं, विचार रहे नहीं, विकार रहे नहीं, प्रश्न रहे नहीं। हाँ! यह ध्याता पर निर्भर करता है कि वह साकार या निराकार, किस प्रकार के ध्यान का अभ्यास करता है, किस प्रकार के ध्यान का सहारा लेता है, किस प्रकार के ध्यान में डूबना चाहता है?

वह चाहे तो भगवान शिव, कृष्ण, विष्णु, हनुमान या दुर्गा, काली, लक्ष्मी, माँ गायत्री आदि किसी भी रूप को, स्वरूप को अपने हृदय में देखने का अभ्यास कर सकता है। बार-बार के अभ्यास से ध्याता को भगवान का वह स्वरूप अपने हृदय में दिखाई देने लगता है। इस प्रकार सगुण, साकार स्वरूप के ध्यान से भगवान के हृदय में विराजमान होते ही हृदय की सारी वासनाएँ संस्कारों के साथ नष्ट हो जाती हैं और जब उस भक्त को, ध्याता को, परमात्मा का साक्षात्कार होता है तो उसके अंतर्मन की, कर्मबंधनों वाली गाँठ टूट जाती है और उसके संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

इसके अलावा साधक सविता ध्यान का अभ्यास भी कर सकता है। हम सुखासन, पद्मासन आदि किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर, शांतचित्त हो, नेत्रों को बंदकर, अपने हृदय में प्रात:कालीन उदीयमान सूर्य का ध्यान कर सकते हैं। तब हमें हृदय में उगते हुए सूर्य के समान तेजस्वी गोला दिखाई देगा। इसे तेजस् ब्रह्म कहते हैं। इसे देखते रहने का अभ्यास करें। इसके निरंतर अभ्यास से समस्त विकार नष्ट होते हैं, मन शांत होता है और हृदय में ही प्रकाशस्वरूप परमात्मा का बोध होने लगता है। इसके अलावा ध्यान की एक अन्य विधि को अपनाकर भी हम अपनी आत्मा का ध्यान भली भाँति कर सकते हैं।

इस विधि में ध्यान करते समय हम भावना करें कि हम अपने हृदय में प्रवेश कर रहे हैं। धीरे-धीरे हृदय की गहराई में उतर जाएँ। हृदय की गुफा की उस नीरवता में, शांति में, जलती हुई एक अखंड ज्योति का दर्शन करें। यह जलती हुई अखंड ज्योति ही वह आत्मा है, जो सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा का अंश है।

इसका निरंतर अभ्यास करने से ज्योतिस्वरूप आत्मा में ही परमात्मा का बोध होता है। पूरे हृदय-क्षेत्र में, हृदय की गुफा में, आत्मा का प्रभाव, परमात्मा का प्रभाव ज्योति के रूप में दीख पड़ता है व अनुभव होने लगता है। इस प्रकार मन को ईश्वर में लगाने पर एवं ईश्वर के सगुण या निर्गुण स्वरूप का ध्यान करने पर जब संसार का विस्मरण होने लगे और अपने हृदय में ही आत्मा व परमात्मा के होने की अनुभूति होने लगे तो इसे ही आत्मबोध व भगवद्दर्शन कह सकते हैं।

साधक चाहे किसी भी मार्ग (हठयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, राजयोग) के मार्ग से चले, पर उसे ध्यान तो करना ही पड़ता है; क्योंकि सभी मार्गों का सार ईश्वर का सदा स्मरण करते रहना है और यह नियम है कि जिस-जिस वस्तु का बारंबार स्मरण किया जाता है, उस ओर मन एकतार चलता ही है और उसे उसी-उसी वस्तु का अनुभव होता है। ध्यान का अर्थ ही है ध्येय वस्तु में मन का एकतार चलना। वह ध्येय वस्तु सगुण-निर्गुण ब्रह्म, गुरु या कोई भी वीतराग ऋषि-महर्षि हो सकते हैं।

ईश्वर का बारंबार स्मरण करने पर ईश्वर में ही मन एकतार चलने लगता है और अंतत: ध्यान करने वाला मन भी ध्येय वस्तु अर्थात ईश्वर में ही लीन हो जाता है, विलीन हो जाता है। बिंदु, सिंधु में विलीन हो जाता है। जीव, ब्रह्म का चिंतन करते-करते ब्रह्म में ही लीन हो जाता है, ब्रह्म में ही विलीन हो जाता है। जीव भी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। ध्याता, ध्येय में ही विलीन हो जाता है। इसे ही योग कहते हैं। इसे ही आत्मा और परमात्मा का मिलन कहते हैं। इसे ही जीव और ब्रह्म का मिलन कहते हैं। इसे ही समाधि कहते हैं।

इस परम अवस्था को प्राप्त साधक को यह निश्चय हो जाता है कि संसार के सारे पदार्थ माया का कार्य होने से अनित्य हैं और एकमात्र परमात्मा ही सर्वत्र समभाव से परिपूर्ण है। वह स्वयं को परमात्मा का एक उपकरण मात्र मानते हुए अपना कर्त्तव्य कर्म करता जाता है। इस प्रकार उसके मन में कर्त्तापन का, कामना का, ममता का, आसक्ति का सर्वथा अभाव हो जाता है, अंत हो जाता है और वह पल-पल आनंद का, ब्रह्म का अनुभव करता है।

ऐसी स्थिति को एक बार प्राप्त कर लेने के बाद उसका सोना-जागना, चलना-दौड़ना, हँसना-बोलना, खाना-पीना सब ध्यान बन जाता है। सच कहें तो उसका जीवन ही ध्यान बन जाता है। उसका जीवन ही ध्यानमय हो जाता है। अचेतन में ध्यान का दीया जलते ही सब कुछ बदल जाता है। कभी संस्कारों से नियंत्रित होने वाला, रहने वाला व्यक्ति आत्मनियंत्रित हो जाता है, ईश्वर नियंत्रित हो जाता है।

उस अवस्था में वह सब प्रकार के दु:खों से, अभावों से, बंधनों से मुक्त हो जाता है। अचेतन में आत्मा का आलोक, परमात्मा का आलोक उतरते ही उसके जीवन में एक नया प्रभात, एक नया सवेरा होता है। उसके अंदर एक नूतन दृष्टि, एक नूतन सृष्टि उत्पन्न होती है। वह, वह नहीं रह जाता, जो अब से पूर्व था। आत्मनियंत्रित होते ही साधक का, योगी का जीवन बदल जाता है। अपनी आत्मकथा 'योगी कथामृत' में परमहंस योगानंद जी ने लिखा है—"उन्नत क्रियायोगी का जीवन अतीत के कर्मों से नहीं, बल्कि केवल उसकी आत्मा के निर्देशों से प्रभावित होता है।"

साधक इस प्रकार साधारण जीवन के अच्छे-बुरे अहंकारजनित कर्मों की देख-रेख में मंथर गति से होने वाले क्रमविकास के बंधन से बच निकलता है। वैसे भी यह घोंघे के समान मंथर गति गरुड़-हृदय योगियों को बोझिल लगती है। परमपूज्य गुरुदेव की स्पष्ट धारणा थी कि मनुष्य नश्वर शरीर नहीं, बल्कि जीवंत आत्मा है। ध्यान के निरंतर अभ्यास से इसे सहज ही अनुभव किया जा सकता है।

नित्यप्रति के ध्यानाभ्यास से चित्त के संस्कारशून्य होते ही साधक बाह्य जगत् के सभी संवेदी विकर्षणों को पार करता हुआ अंतर्जगत में प्रवेश करता है और परम सत्य का अनुभव करता है। वह अपनी आत्मा की गहराई में सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् को स्वयं अनुभव करके परम तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। उसके जीवन में तब नवप्रभात, नया सबेरा हो जाता है।

यह नवप्रभात, यह नया सबेरा हमारे जीवन में भी आ सकता है, उतर सकता है। हमें हमारे भीतर ही स्वर्गीय आनंद की अनुभूति हो सकती है। हमें भी सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की अनुभूति हो सकती है यदि हम भी अपने मन में ध्यान का दीप जला लें, ध्यान का दीया जला लें। ❑

एक गुलदस्ते के पुष्प हम-सब

यदि आप सृजन पथ के राही हैं तो इससे अधिक फरक नहीं पड़ता कि कौन क्या कर रहा है, कितना आगे बढ़ रहा है या किस दिशा में जा रहा है; क्योंकि यदि हमारा ध्यान इस ओर केंद्रित है कि दूसरे क्या कर रहे हैं और उनसे तुलना-कटाक्ष में हम लग जाते हैं तो मान कर चलें कि तब हम प्रतिद्वंद्विता के कुचक्र में उलझ रहे हैं, जिसके साथ फिर ईर्ष्या-द्वेष, भय-संशय, तनाव-अवसाद एवं दुर्भाव के बवंडर जीवन को घेरने वाले हैं और तब हमारे जीवन का अशांत व क्लांत होना तय है।

यहीं पर हमें सँभलने की आवश्यकता होती है व यही समय अपने भीतर निहारने का होता है कि हम कर क्या रहे हैं? तब हमें अपने जीवनलक्ष्य के पुनर्निर्धारण की आवश्यकता होती है। ईश्वर ने हमें कुछ ऐसी खास विशेषताएँ एवं क्षमताएँ दी हुई हैं, जिनको लेकर हम धरती पर आए हैं व इनके साथ हमें कुछ सार्थक प्रयोजन सिद्ध करना है। थोड़ा-सा पुनरावलोकन करने पर, पीछे अपनी जीवनयात्रा को निहारने पर इसका स्वरूप स्पष्ट होने लगता है।

बस, आवश्यकता इस पर ध्यान केंद्रित करने व नियमित रूप से इसके निरीक्षण व परिष्कार के करने की होती है। अपने कर्त्तव्य पथ पर बढ़ते हुए जीवन की मौलिक यात्रा पर हमें आगे बढ़ना होता है। नियमित रूप में अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन हमें करना होता है। रोज अपने रिकॉर्ड तोड़ने होते हैं और रात को सोते समय अपने श्रेष्ठतम प्रयास के साथ चैन की नींद में विश्राम करना होता है।

प्रतिद्वंद्विता में उलझने पर हम इस अवसर से वंचित रह जाते हैं। तब हम अपनी अंतरात्मा की आवाज सुनने के बजाय हम बाहर के कोलाहल में खो जाते हैं। ऐसे में हमारे जीवन की दिशा भ्रमित हो जाती है और हम अपनी उन महान संभावनाओं से च्युत हो जाते हैं, जिन्हें बीज रूप में लेकर हम धरती पर आए थे, जिनको विकसित करते हुए हमें अपने जीवन का बगीचा सुरभित करना था।

ऐसे में थोड़ा ठहरकर चारों ओर प्रकृति को निहारते हुए देखें कि इसके हर फूल का अपना रंग-रूप, स्वभाव एवं खिलने का समय होता है। सब फूलों का रंग एक जैसा कब होता है, सब फूल एक साथ कहाँ खिलते हैं। कोई सरदी में तो कोई गरमी में खिलता है। अधिकांश वसंत में सदाबहार होते हैं, लेकिन सबकी अपनी सुंदरता, खूबियाँ, रंगत एवं विशेषताएँ भी होती हैं।

गुलाब के फूल की कमल से तुलना नहीं की जा सकती। गेंदे के फूल को डहेलिया से नहीं तौला जा सकता है। मौसमी फूल की सदाबहार फूल से तुलना नहीं हो सकती। हर पुष्प अपने रंग में, अपने अंदाज में, अपनी महक के साथ खिलता है और विश्व उद्यान के सौंदर्य में एक विशिष्ट योगदान देता है। ऐसे ही हर व्यक्ति की इस विस्तृत संसार में अपनी एक विशिष्ट भूमिका है, जो कुछ नियति द्वारा तो कुछ अपने पुरुषार्थ द्वारा निर्धारित होती है।

साधक वह है, जो विघ्न-बाधाओं को रौंदता हुआ निरंतर अपने लक्ष्य और उन्नति पथ की ओर अग्रसर होता है।

कुछ विशेषताओं एवं कुछ कमियों का मिश्रण हर मनुष्य की एक लंबी विकासयात्रा का परिणाम है, जिसे अपने भव्यतम रूप में प्रकट होना है, जिसके पुष्पित होने का, सुगंध बिखेरने का अपना समय होगा, अपनी अवधि होगी, अपना अंदाज होगा। इस संभावना पर विश्वास करें व इसका धैर्यपूर्वक इंतजार करें। इसमें किसी दूसरे के साथ तुलना करना बेईमानी होगी।

आखिर सबको आगे-पीछे खिलते हुए साथ-साथ ही इस विश्व बगिया में, ईश्वर के विश्व उद्यान में एक सुंदर गुलदस्ते का रूप लेकर इसको सुरभित करते हुए इसे शोभायमान करना है। इसी में जीवन का सौंदर्य, आनंद एवं इसकी सार्थकता का सार छिपा हुआ है। ❑

चींटियाँ भी करती हैं पशुपालन

इस संसार में इनसान के अलावा कीट-पतंगों की भी एक रोचक दुनिया है। यह दुनिया अपने ढंग की है, इनके क्रियाकलाप बड़े ही अद्‌भुत होते हैं। इस संदर्भ में चींटियों के पशुपालन की घटना अद्‌भुत है। चींटियाँ और पशुपालन कुछ अनोखी बात लगती है, किंतु चींटियों के पालतू पशु चार टाँगों और दो सींगों वाले नहीं होते, जिन्हें इनसान पालते हैं।

उनके पालतू जंतु चींटियों के समान ही कीट होते हैं, जिनकी छह टाँगें होती हैं और सिर के आगे एक नुकीली सूँड़ होती है। जिसकी सहायता से वे पौधों का रस चूसते हैं। खटमल कुल के ये कीट बहुत सूक्ष्म होते हैं। इन्हें माहू (अँगरेजी में एफिड) कहते हैं। वैसे तो माहू की लगभग 5000 प्रजातियाँ पूरे संसार में पाई जाती हैं, किंतु सम-शीतोष्ण प्रदेशों में ये खूब पनपते हैं।

इनका आकार इतना छोटा और वजन इतना कम होता है कि हवा इन्हें उड़ाकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। मादा माहू के पंख होते हैं और वे अपने बलबूते पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़कर जा सकती हैं। माहू की कुछ प्रजातियों का जीवन चक्र पौधों की दो अलग-अलग प्रजातियों पर पूरा होता है।

कुछ प्रजातियाँ एक ही प्रजाति के पौधों पर जिंदगी गुजार देती हैं। कुछ अन्य प्रजातियों को पोषक पौधे को लेकर कोई विशेष अभिरुचि नहीं होती और वे किसी भी प्रजाति के पौधे का रस चूस सकती हैं। माहू फसलों, जंगल के वृक्षों और बगीचों में लगे पौधों को भारी नुकसान पहुँचाते हैं।

इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि वे पौधों का रस चूसकर उन्हें कमजोर कर देते हैं। इसके अतिरिक्त माहू पौधों में कई प्रकार के वायरस को फैलाने का काम करते हैं, जो रोगों का कारण बनते हैं। इसके अलावा माहू अपने मल द्वार से मधुरस नामक एक तरल, चिपचिपा पदार्थ स्रावित करते हैं, जो मीठा होता है।

पौधों पर पड़े इस मधुरस पर काले रंग की एक फफूँद उग जाती है, जिसके कारण सजावटी पौधों की सुंदरता नष्ट हो जाती है। माहू का नियंत्रण काफी मुश्किल होता है, क्योंकि ये कई प्रकार के कीटनाशकों के प्रतिरोधी होते हैं। इसके अलावा ये अधिकतर पत्तियों की निचली सतह पर चिपके रहते हैं, जहाँ कीटनाशक दवा नहीं पहुँच पाती।

कई अन्य कीट और कीटों के लार्वा माहू का शिकार करते हैं। चींटियों और माहू में परस्पर लाभ- प्राप्ति का रिश्ता होता है। चींटियों को माहू के शरीर से निकलने वाला मधुरस बहुत पसंद होता है। अत: जिस पौधे पर माहू अधिक होते हैं, वहाँ चींटियों की आवाजाही होती रहती है। चींटियाँ अपने स्पर्षकों (एन्टीना) से माहू के शरीर को थपथपाती हैं।

ऐसा करने पर माहू अपने मल द्वार से मधुरस का स्राव करने लगता है और चींटी को स्वादिष्ट पेय मिल जाता है। कुछ मधुमक्खियाँ माहुओं के मधुरस से शहद बनाती हैं। चींटियाँ माहुओं को खाने वाले अन्य कीटों को उस पौधे पर से भगाती हैं और इस प्रकार माहू को सुरक्षा प्रदान करती हैं। कुछ चींटियाँ माहू के अंडों को जाड़े के दिनों में अपनी बाँबी में लाकर रख लेती हैं और ठंढा मौसम समाप्त होने पर अंडों में से निकली इल्लियों को वापस पौधों पर छोड़ देती हैं।

कुछ पशुपालक चींटियाँ इससे भी एक कदम आगे बढ़ जाती हैं। वे अपनी बाँबी में माहू के झुँड पालती हैं— ठीक उसी तरह से, जैसे पशुपालक पशुओं को पालते हैं। ये माहू बाँबी में ही रहते हैं और बाँबी के अंदर फैली हुई पौधों की जड़ों का रस चूसते हैं। इस प्रकार चींटियों को अपने घर में ही मधुरस की मधुशाला मिल जाती है। जब कोई मादा चींटी अपनी बाँबी छोड़कर दूसरी बाँबी बसाने के लिए निकलती है तब वह माहू के अंडे साथ ले जाती है, ताकि उसके नए संसार में माहू के झुंड की शुरुआत हो सके।

पशुपालन की इस कहानी में एक रोचक मोड़ तब आता है, जब कुछ चालाक प्रकार के कीट बाँबी में घुसपैठ करते हैं। कुछ विशेष प्रजातियों की तितलियाँ उन पौधों पर

अंडे दे देती हैं, जहाँ चींटियाँ माहुओं को पाल रही होती हैं। इन अंडों से निकलने वाली इल्लियाँ एक प्रकार का रसायन छोड़ती हैं, जिसके कारण चींटियाँ उन्हें भी अपनी ही तरह की चींटियाँ समझने लगती हैं और उन पर हमला नहीं करतीं।

ये इल्लियाँ चींटियों के पालतू माहुओं को खाती रहती हैं। इल्लियों को चींटी समझकर वयस्क चींटियाँ इन इल्लियों को अपनी बाँबी में ले जाती हैं और उनके लिए भोजन जुटाती हैं। इसके बदले में इल्लियाँ चींटियों के लिए, मधुरस का उत्पादन करती हैं। जब इल्लियों की आयु पूरी हो जाती है तब वे शंखी में बदल जाती हैं।

शंखी बनने से पहले इल्लियाँ रेंगकर बाँबी के दरवाजे पर पहुँच जाती हैं और वहाँ निष्क्रिय शंखी में बदल जाती हैं। दो सप्ताह के बाद शंखी फट जाती है और तितली उस में से निकल जाती है। अब चींटियों को पता चल जाता है कि उन्हें किस प्रकार धोखा दिया गया और वे तितलियों पर हमला कर देती हैं, किंतु तितलियों के पास इससे बचने का एक विलक्षण तरीका होता है।

उनके पंखों पर एक विशेष किस्म का चिपचिपा पदार्थ लगा होता है, जिसके कारण चींटियों के जबड़े काम नहीं कर पाते और तितलियाँ सुरक्षित रूप से उड़ जाती हैं। कुछ माहू भी चींटियों के साथ धोखाधड़ी करने से बाज नहीं आते। एक प्रजाति के माहू के दो रूप होते हैं—एक गोल और एक चपटा।

गोल रूप के माहुओं को चींटियाँ उसी प्रकार पालती हैं, जैसे वे अन्य प्रजातियों के माहुओं को पालती हैं, किंतु चपटे वाले माहू धोखेबाज होते हैं। इनकी त्वचा में उसी प्रकार के रसायन होते हैं, जैसे चींटियों की त्वचा में होते हैं। इसके फलस्वरूप चींटियाँ उन्हें अपनी ही इल्लियाँ समझकर बाँबी में लाकर उनकी परवरिश करती हैं और बाद में धोखा खाती हैं।

यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि इस सृष्टि में सभी जीवों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सभी जीव अपने-अपने ढंग से जीवनयापन करते हुए प्राकृतिक विकास में अपना योगदान प्रदान करते हैं। इसलिए सभी जीव-जंतु प्रकृति के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। ❑

****

एक कवि ने राजा की प्रशंसा में लंबी कविता इस भावना से चावपूर्वक सुनाई कि उसके बदले में राजा कोई बड़ा उपहार देगा। कवि दरबार में उपस्थित हुए। राजा ने ध्यानपूर्वक़ उनकी रचना सुनी, साथ ही उद्देश्य भी समझा। अब पुरस्कार देने की बारी आई। राजा ने कल दस हजार स्वर्णमुद्राएँ देने की बात कही और उन्हें विदा कर दिया।

कवि रात भर मिलने वाली राशि में अनेकानेक मनोरथ पूरे करने की योजनाएँ बनाते रहे। फूले नहीं समाते थे। उत्सुकता और प्रसन्नता इतनी छाई रही कि रात को नींद भी न आई।

दरबार लगते ही कवि जा पहुँचे। राजा ने अनजान की तरह पूछा—"किसलिए इतनी जल्दी आना हुआ ?" कवि भौंचक्के रह गए। स्मरण दिलाया कि उन्हें आज दस हजार स्वर्णमुद्राओं का उपहार राज्यकोष से मिलना जो है। राजा हँस पड़े, बोले—"आपने हमें बातें बनाकर खुश कर दिया। वही हमने किया। खुशी की बात सुनाकर आपका मन हरा कर दिया, वस्तुतः स्वर्णमुद्राएँ लेनी हों तो उसके बदले का परिश्रम राज्य-व्यवस्था के लिए करना। कवि निराश लौट गए।"

****

भारतीय संस्कृति के राजदूत स्वामी विवेकानंद

उन्नीसवीं सदी में विश्व के सामने भारत के आध्यात्मिक विचारों और संस्कृति को अपनी बौद्धिक कुशलता से प्रस्तुत करने वाले अद्‌भुत संन्यासी स्वामी विवेकानंद ने भारत को नई चेतना से ओत-प्रोत किया। उन्होंने अध्यात्म, भारत की प्राचीन संस्कृति सर्वधर्म समभाव का भाव प्रदत्त करने के साथ ही भारत की स्वाधीनता में भी अपना अतुलनीय योगदान दिया।

स्वामी जी ने भारत की युवाशक्ति को आह्वान किया—हे वीर हृदय युवकवृंद! उठो, जागो और आगे बढ़ो, देशभक्त बनो। शिकागो में 11 सितंबर, 1893 से विश्व धर्मसभा प्रारंभ हुई थी, जो 24 सितंबर, 1893 तक चली थी। उस धर्मसभा में स्वामी विवेकानंद ने लगभग प्रतिदिन अपना व्याख्यान दिया था। उन्होंने अपना मुख्य व्याख्यान इस महासभा में नौवें दिन 19 सितंबर, 1893 को पढ़ा था। हिंदू धर्म की आभ्यंतरिक शक्ति, वेदों की नित्यता, सृष्टि अनादि तथा अनंत है, इसलिए उन्होंने आत्मा, ऋषि तथा पुनर्जन्मवाद आदि विषयों पर विस्तृत व्याख्यान दिया।

अपनी भावराशि की चमत्कारिक अभिव्यक्ति एवं आकृति के प्रभाव के कारण धर्म महासभा में वे अत्यंत लोकप्रिय थे। विवेकानंद जब मंच के एक कोने से अन्य कोने तक चलकर जाते तो तालियों की गड़गड़ाहट से उनका अभिवादन होता। सभा की कार्यसूची में विवेकानंद का वक्तव्य सबसे अंत में रखा जाता था, ताकि अन्य सभी को भी बोलने का अवसर मिल सके।

उस समय पाश्चात्य देशों में अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनी होती थी, उसमें औषधिशास्त्र, न्यायशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अन्यान्य क्षेत्रों के तात्त्विक विषयों पर शोध संबंधी विचार-विनिमय होता था। शिकागो निवासियों के मन में यह विचार आया कि संसार के प्रमुख धर्मों का सम्मेलन ही अन्य सब परिषदों में उच्चतम एवं श्रेष्ठ होगा। भारत के शिष्यों ने स्वामी विवेकानंद से अनुरोध किया कि वे इस अवसर पर अमेरिका जाकर हिंदू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में अपना भाषण दें।

वे शिष्यों के अनुरोध पर शिकागो पहुँचे। हॉर्वर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर राइट ने स्वामी जी की प्रतिभा से प्रभावित होकर, उन्हें धर्म परिषद् में एक प्रतिनिधि के रूप में स्थान तथा सम्मान प्राप्त कराया। इस धर्मसभा को **विश्व सर्वधर्म सभा** भी कहा गया था।

संयुक्त राज्य अमेरिका में अपने धर्म संप्रदाय के सबसे बड़े धर्मगुरु जो कि इस परिषद् का उद्‌घाटन करने वाले थे, कार्डिनल गिबन्स एक ऊँची कुरसी पर बैठे थे। ब्राह्म, बौद्ध, इसलाम, पारसी, जैन, ईसाई आदि धर्मों के धर्मगुरु भी इस सभा में आए थे। उनके अलावा भारतीय धर्मगुरु बैठे थे, किंतु हिंदू धर्म के वास्तव में एकमात्र प्रतिनिधि स्वामी विवेकानंद ही थे।

कोलंबस हॉल में उपस्थित चार हजार श्रोताओं के समक्ष जब स्वामी जी ने हिंदू धर्म की महानता व उसकी प्राचीनता पर अपना व्याख्यान दिया तो श्रोता मुग्ध हो गए। विश्व के लोगों को हिंदू दर्शन का तत्त्व तब प्राप्त हुआ। स्वामी जी ने कहा—"मुझको ऐसे धर्म का धर्मावलंबी होने का गौरव है, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सब धर्मों को स्वीकार करने की शिक्षा दी है।" वे बोले—"हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, बल्कि सब धर्मों को सच्चा मानकर ग्रहण करते हैं।" सम्मेलन के विदाई दिवस 24 सितंबर, 1893 को स्वामी जी ने धर्म के संबंध में कहा—"ईसाई को हिंदू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए और न हिंदू अथवा बौद्ध को ईसाई ही, पर हाँ! प्रत्येक को चाहिए कि वह एकदूसरे के प्रति समभाव रखे।"

इस सर्वधर्म परिषद् ने जगत् के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है तो वह यह कि उसने यह सिद्ध कर दिखाया है कि शुद्धता, पवित्रता और दयाशीलता किसी संप्रदाय विशेष की संपत्ति नहीं है एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ व अतिशय उन्नत चरित्र व्यक्तित्वों को जन्म दिया है। प्राच्य भारतीय दर्शन के इस संन्यासी ने विश्व में अनेक देशों की यात्रा कर, भारतीय अध्यात्म को शीर्ष पर पहुँचाया। ❑

राष्ट्र का सांस्कृतिक जागरण

अनादिकाल से भारत विश्व का मार्गदर्शन करता रहा है, संस्कृति का आदिस्रोत रहा है। **सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा** का वेदवाक्य इस तथ्य की पुष्टि करता है। यहाँ से ज्ञान-विज्ञान की अजस्र धाराएँ विश्वकल्याण हेतु प्रवाहित होती रहीं। इसके अप्रमित सौंदर्य एवं विशेषताओं के कारण इसे '**स्वर्गादपि गरीयसी**' की संज्ञा दी गई। श्रेष्ठ एवं सुसंस्कृत जीवन जीने के क्षेत्र में मार्गदर्शन करने के आधार पर यह जगद्गुरु के पद पर सुशोभित हुआ।

आर्थिक रूप से यह इतना समृद्ध रहा कि इसे सोने की चिड़िया कहकर पुकारा गया। यह परंपरा न्यूनाधिक रूप में एक सहस्राब्दि तक अक्षुण्ण रही, फिर पतन-पराभव के दुर्दिन आए। राष्ट्र जब संकीर्ण स्वार्थपरता, सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों के साथ आंतरिक रूप से दुर्बल हुआ तब पतन का क्रम शुरू हुआ। दुर्बलता के इस दौर में मुट्ठी भर विदेशी आक्रांता आकर इसको रौंदते और लूटते गए तथा यहाँ के शासक बन बैठे और एक गौरवशाली राष्ट्र पददलित अवस्था में आ गिरा।

पग-पग पर देश पराश्रयी, परावलंबी और परमुखापेक्षी होता गया। आश्चर्य नहीं कि पिछले लगभग एक हजार वर्ष तक यह महान देश पराधीनता के अँधेरे युग से गुजरा। बीच-बीच में जागरण की लहरें भी उठती रहीं, लेकिन ये कुछ क्षेत्र विशेष तक सिमटी रहीं और अंतत: 19वीं सदी में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रभावशाली दौर प्रारंभ हुआ। सोया हुआ राष्ट्र जैसे जाग उठा।

भारतीय सपूतों के अतुलनीय शौर्य, बलिदान एवं त्याग की गाथाओं के बीच राष्ट्र ने विदेशी दासता की केंचुली को उतार फेंका और उसे राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्रता भी प्राप्त हुई। आजादी के उपरांत की यात्रा में धीरे-धीरे आर्थिक विकास की रफ्तार पकड़ते हुए पड़ोसियों के औचक हमलों के बीच देश की सुरक्षा व्यवस्था भी चाक-चौबंद हुई।

तमाम तरह के राजनीतिक प्रयासों के बीच राजनीतिक स्थिरता को साधते हुए आज भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र बन चुका है, सबसे अधिक युवा आबादी वाला देश है और साथ ही अपने सनातन गौरव के साथ अपनी हुंकार भरने के लिए कटिबद्ध एक स्वाभिमानी, स्वतंत्र एवं सशक्त राष्ट्र भी है।

कई अंशों में पूरा विश्व उसकी वैश्विक उपस्थिति को स्वीकार भी कर रहा है, लेकिन अभी भी बहुत से कार्य शेष हैं। व्यापक स्तर पर अभी भी गुलामी के संस्कार गए नहीं हैं। कुछ लोग अभी भी पश्चिम को ही अपना आश्रय और आदर्श मानते हैं व कुछ तो बाहरी विध्वंसक शक्तियों के माध्यम तक बनकर राष्ट्रविरोधी कार्यों में सम्मिलित हैं। यह सब अपने क्षुद्र स्वार्थ और सत्तालोलुपता के कारण हो रहा है। साथ ही अपनी सांस्कृतिक विरासत से अनभिज्ञता एवं संवेदना का अभाव भी इसका एक बड़ा कारण है।

इन आधारों के कारण भारत को जितना खतरा बाहर से है, उससे भी कहीं अधिक भीतर से है। जितना भारत को बाहर से सशक्त बनना है, उससे अधिक उसे आंतरिक रूप से सुदृढ़ बनना है। अपने ही देश, संस्कृति, धर्म और राष्ट्र को नकार रहे विघटनकारी तत्त्वों से जिस सजगता से निपटना है, उससे भी अधिक दृढ़ता के साथ आंतरिक रूप से परिष्कृत एवं सशक्त होना है; क्योंकि भारत जैसे विशाल एवं विविधतामूलक देश को एकजुट बनाए रखना, इसकी एकता-अखंडता को बरकरार रखना कोई सरल कार्य नहीं।

इसमें जितने सारे धर्म, संप्रदाय, समूह, जातियाँ, भाषाएँ तथा क्षेत्र हैं—इन सबको एकता के सूत्र में बाँधे रखना व इन्हें एकजुट बनाए रखना निश्चित रूप से एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इन्हें मात्र राजनीतिक, आर्थिक या शासकीय कौशल के आधार पर नहीं साधा जा सकता। इन्हें तो नैतिक-सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक आधार पर ही एकजुट रखा जा सकता है और भारतीय संस्कृति में अंतर्निहित कालजयी क्षमता इसको संभव करने में समर्थ है। इसमें निहित समन्वय की अद्भुत क्षमता के आधार पर यह संभव है। इसके '**आत्मवत् सर्वभूतेषु, वसुधैव कुटुम्बकम्**' के सिद्धांत न केवल देश को, बल्कि पूरे विश्व को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता रखते हैं।

इसी क्षमता के चलते सदियों से कितने आक्रांता यहाँ आए, लेकिन सभी इसमें समाहित होते गए और इसकी संस्कृति का हिस्सा बनते गए। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में—विश्व की भावी एकता की भूमिका भारत की सामाजिक संस्कृति में है। जैसे भारत ने किसी भी धर्म का दलन किए बिना अपने यहाँ धार्मिक एकता स्थापित की। जैसे इसने किसी भी जाति की विशेषता को नष्ट किए बगैर सभी जातियों को एक सांस्कृतिक सूत्र में आबद्ध किया।

कुछ उसी प्रकार हम संसार के सभी देशों, सभी जातियों एवं सभी विचारों के बीच एकता स्थापित कर सकते हैं। आज हम कुछ ऐसे ही सांस्कृतिक जागरण एवं संक्रमण के ऐतिहासिक पलों से गुजर रहे हैं। आज वैश्वीकरण के दौर में जब पूरा विश्व एक गाँव में बदल चुका है, लेकिन लोगों के दिलों के मध्य भावनात्मक दूरियाँ बढ़ी हैं तो इनको सांस्कृतिक संवेदना के आधार पर ही पाटा जा सकता है।

नवजागरण की इस प्रभात वेला में हमें आत्मोद्धार के साथ-साथ विश्वोद्धार करना है। अपनी सांस्कृतिक विरासत और इसकी गौरव-गरिमा को सँजोते हुए पूरे भावावेश एवं प्रचंड पुरुषार्थ के साथ इसे अपनी सनातन स्थिति में प्रतिष्ठित करना है। इस हेतु संस्कृति की आत्मा ने हमें पुकारा है। देव संस्कृति के कालजयी वर्चस्व की पुनः स्थापना होनी है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस के आगमन के साथ इसका दौर प्रारंभ भी हो चुका था। स्वामी विवेकानंद ने विश्व धर्मसभा में इसका दिगंतव्यापी उद्घोष किया था। महर्षि रमण और महर्षि अरविंद के अलौकिक तप के साथ इसका विश्वव्यापी प्रसार हुआ और फिर परमपूज्य गुरुदेव के प्रचंड तप के साथ संस्कृति संवेदना को धरती पर उतारने का भागीरथी प्रयास-पुरुषार्थ भी संपन्न हो चुका है।

भारतीय संस्कृति के माता-पिता गायत्री महाशक्ति एवं यज्ञ भगवान लोकजीवन का हिस्सा बनते जा रहे हैं। गायत्री महाशक्ति हर साधक के जीवन को रूपांतरित कर प्रज्ञावान बना रही है। घर-घर में यज्ञ और संस्कार के साथ नई पीढ़ी के संस्कार और परिवार निर्माण का सिलसिला जारी है।

पर्व-त्योहारों का सांस्कृतिक उल्लास समाज-राष्ट्र की आत्मा को छूता हुआ इसे संस्कारित कर रहा है। रचनात्मक आंदोलन के नवनिर्माण की पटकथा लिखने के लिए आज सभी राष्ट्रवासी आतुर हैं। हम नए युग के आगमन की दहलीज पर खड़े हैं। इसमें अपनी सार्थक भूमिका सुनिश्चित करने का ऐतिहासिक अवसर हमारे सामने है और उस अवसर को सार्थक बना पाने का कार्य ही इन परिस्थितियों में हमें साकार कर दिखाना है। ❑

जीवन और मृत्यु में बहस छिड़ गई कि किसकी महत्ता ज्यादा है ? जीवन बोला—''मेरी ही महत्ता ज्यादा है, तुम भला दूसरों को नष्ट करने के अतिरिक्त और क्या करती हो ?'' मृत्यु ने हँसकर कहा—''चलो एक प्रयोग करके देखते हैं।'' प्रयोग के रूप में मृत्यु ने जीवन-हरण करना बंद कर दिया तो लोग अमर होने लगे।

अमर होते ही जीवन का मूल्य लोगों की दृष्टि में जाने लगा और वे जीवन का दुरुपयोग करने लगे। अब जीवन को अपनी भूल का भान हुआ। दोनों ने जान लिया कि दोनों ही एकदूसरे के सहायक और पूरक हैं और दोनों का महत्त्व साथ-साथ रहने में ही है, एकदूसरे का विरोध करने में नहीं।

जीवन-साधना का योगपथ एवं धारणा

पतंजलि योग में धारणा, ध्यान व समाधि की ओर बढ़ते चरणों का पूर्वांग है। यहीं से अंतरंग योग प्रारंभ होता है। इससे पूर्व के चरणों को बहिरंग योग कहा गया है; जिसके अंतर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार का क्रम आता है, जिन्हें योग की तैयारी भर कह सकते हैं।

प्रत्याहार इसका मध्य बिंदु है, जहाँ से चेतना के शिखर के आरोहण के पूर्व की भाव-भूमिका एवं तैयारी प्रारंभ हो जाती है। इसी के साथ पतंजलि योगसूत्र का साधनपाद समाप्त होता है और विभूतिपाद प्रारंभ होता है तथा योगपथ की गहराइयों की ओर सधे कदमों के साथ साधक आगे बढ़ता है।

विभूतिपाद के पहले श्लोक में धारणा का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं—**देशबंधश्चित्तस्य धारणा।** *विभूतिपाद (3-1)* अर्थात किसी एक देश या विषयवस्तु में चित्त को ठहराना धारणा है। यह देश अंदर या बाहर कुछ भी हो सकता है। महर्षि वेदव्यास के शब्दों में नाभिचक्र, हृदय पुंडरीक, मूर्द्धज्योति, नासिकाग्र, जिह्वाग्र इत्यादि देशों में बंध होना अथवा बाह्य विषय में वृत्तिमात्र के द्वारा चित्त का जो बंध है—वही धारणा है।

इस तरह धारणा किसी एक बिंदु पर स्थिर होने या टिकने का नाम है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में जब मन शरीर के भीतर या उसके बाह्य किसी वस्तु के साथ संलग्न होता है और कुछ समय तक उसी तरह रहता है तो उसे धारणा कहते हैं। इस अवस्था में चित्तवृत्ति ध्येय के विषय से तदाकार होकर स्थिर रूप से उसके स्वरूप को प्रकाशित करने लगती है।

उपनिषदों में धारणा को ब्रह्म से जोड़कर प्रतिपादित किया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् के अनुसार पंचज्ञानेंद्रियों के विषयों में ब्रह्मभाव की उपस्थिति का होना ही धारणा है। तेजोबिंदूपनिषद् के मत में मन के विषयों में ब्रह्मभाव की उपस्थिति होना ही धारणा है और त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् चित्त के निश्चलीय भाव को धारणा कहते हैं।

विष्णुपुराण के अनुसार चित्त के अन्य आश्रयों से हटकर भगवान के मूर्तरूप में स्थिर होने को धारणा कहते हैं। गरुड़पुराण काल के परिप्रेक्ष्य में धारणा की व्याख्या करते हैं। इसके अनुसार बारह बार प्राणायाम करने में जितना समय व्यतीत होता है, उतने समय तक मन को ब्रह्म में स्थापित करें अर्थात धारणा करें—यही धारणा का सामान्य लक्षण है।

परमपूज्य गुरुदेव योगदर्शन के भाष्य में लिखते हैं कि चित्तवृत्ति को शरीर के किसी स्थान विशेष जैसे—नाभिचक्र, हृदयकमल, नासिका के अग्रभाग, दोनों नेत्रों के मध्य एवं आकाश, सूर्य, चंद्रमा आदि देवता या किसी मूर्ति एवं शरीर के बाहर के अन्य पदार्थों में किसी एक में या अन्य सभी तरह के विषयों से विरक्त हो एक ही ध्येय विषय पर चित्त की वृत्ति को स्थिर या केंद्रित करने का नाम ही धारणा है।

इस तरह धारणा के प्रयोग कई स्तर पर किए जा सकते हैं, लेकिन प्रारंभ व्यक्ति को अपनी स्थिति के अनुरूप करना होता है। वह चेतना के किस धरातल पर खड़ा है, इसका निर्धारण महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जीवन का सामान्य-सा अनुभव यह स्पष्ट करता है कि एक व्यक्ति अपनी रुचि के विषयों में सरलता से धारणा को सिद्ध कर रहा होता है।

यह बात अलग है कि वह इसको स्वामी की तरह कर रहा है या आसक्तिवश गुलाम की तरह। साथ ही इस धारणा से उत्पन्न हो रही ध्यान की स्थिति व्यक्ति को किस ओर ले जा रही है—यह दूसरा प्रश्न है। जीवन प्रकाश, समाधान, शांति की ओर बढ़ रहा है या अशांति, अंधकार व बंधन की ओर। इस तरह धारणा की दिशा मायने रखती है।

निश्चित ही यदि धारणा का विषय आध्यात्मिक है; जो किसी इष्ट, आराध्य, श्रेष्ठ आदर्श, विचार या भाव पर केंद्रित है तो यह अपनी परिणति में ऊर्ध्वगामी एवं सकारात्मक परिणाम लिए होगा। अतः धारणा के विषय का उदात्त, श्रेष्ठ एवं दिव्य होना आवश्यक है।

एक जीवन-विद्या के साधक के रूप में धारणा का विषय व्यक्ति का स्वयं का जीवन, अपने व्यक्तित्व का

परिष्कार एवं विकास हो जाता है, जो आत्मसाक्षात्कार, ईश्वरदर्शन, मोक्ष-मुक्ति, समाधि जैसी स्थिति की ओर ले जाए। अपने इष्ट-आदर्श-सद्गुरु के सान्निध्य में जब व्यक्ति को उपासना, साधना एवं आराधना में रस आने लगता है तो धारणा की प्रक्रिया सहज रूप में घटित होने लगती है।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में प्रत्याहार के अंतर्गत आपको कुविचारों और कुसंस्कारों को उगल देने की शिक्षा दी गई है। मन को स्वच्छ और सुसंस्कृत करने की शिक्षा का वह पूर्वार्द्ध है। बरतन को खाली करने के बाद उसमें कुछ भरना भी होगा। खेत में झाड़-झंखाड़ उखाड़ देने के उपरांत उसमें अच्छा बीज बोया भी जाता है। सफाई के बाद सजावट भी चाहिए। फोड़े को चीर देने के बाद उस पर मरहम भी लगेगा। खरच करने के बाद कुछ कमाया भी जाएगा। दोनों पलड़े बराबर कर लेने पर ही काँटे का संतुलन ठीक होगा।

प्रत्याहार अधूरा है, यदि उसके बाद धारणा का प्रयत्न नहीं किया जाए। कुविचारों का परित्याग करके उनके स्थान पर उत्तम विचारों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। इस तरह परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में, मन को स्वच्छ और सुसंस्कृत करने की शिक्षा का उत्तरार्द्ध धारणा में निहित है। अच्छे, आवश्यक, सामयिक एवं उपयोगी गुणों को चुन-चुनकर अपने अंदर धारण करना चाहिए।

इन गुणों को ग्रहण कर लेने के उपरांत अपनी जो उच्च स्थिति हो जाएगी, उसका सुनहला चित्र आशा भरी दृष्टि से देखना चाहिए। उन्हीं गुणों को प्राप्त करने के उपायों को सोचना चाहिए। यदि आपने मन में यह ठान लिया है कि हम अपने अंत:करण को स्वच्छ, निर्मल और पवित्र बनाएँगे तो विश्वास रखिए कि आप बहुत शीघ्र वैसे ही बन जाएँगे।

आप में अनेक उच्च गुणों की भरमार होने में अधिक समय न लगेगा। धारणा का ऐसा ही माहात्म्य है। जिसका जैसा विश्वास है, वह वैसा ही बन जाता है। प्रतिदिन उपासना के पलों में धारणा का अभ्यास किया जा सकता है। किसी एकांत-शांत स्थल पर या अपनी पूजास्थली पर स्थिर आसन में बैठकर शरीर का अवलोकन करें।

हरेक अंग पर ध्यान जमाएँ और उस अंग को स्वस्थ, बलवान, सतेज अनुभव करें। भाव करें कि उनके अंदर पर्याप्त शक्ति है, पूर्ण स्वस्थता है। रक्त-संचार ठीक प्रकार से हो रहा है, स्फूर्ति छलक रही है व तेज जगमगा रहा है। यह भावना हाथ, पाँव, नाक, कान, आँख, पेट, छाती आदि अंग-प्रत्यंगों में करने के बाद सारे शरीर को एक साथ ध्यान से देखिए और अनुभव कीजिए कि वह सब प्रकार से स्वस्थ, सुंदर, बलिष्ठ एवं सशक्त हो रहा है और स्वस्थ एवं नीरोग शरीर के सभी गुण उसमें विद्यमान हैं।

अब मन पर ध्यान दीजिए। भाव करें कि मस्तिष्क स्थान में तीव्र बुद्धि, स्मरण शक्ति, चतुरता, ज्ञान, विवेक आदि मस्तिष्कीय शक्तियों की प्रचुरता विकसित हो रही है और हृदय स्थान में सत्य, प्रेम, न्याय, दया, साहस, त्याग, उत्साह, कर्मनिष्ठा जैसे सद्गुण उभर रहे हैं। मस्तिष्क में बौद्धिक एवं हृदय में आत्मिक गुणों का उभार हो रहा है।

अनुशासन जीवन जीने की एक कलापूर्ण पद्धति है, जिससे जीवन के नक्शे में प्रत्येक पहलू, रंग-रूप यथास्थान चित्रित किए जाते हैं और मानवीय गुण, आदर्शों का सुंदर रंग भरा जाता है, जिससे अलौकिकता छिटकने लगती है।

इस तरह प्रत्येक दिन अपनी पवित्रता, प्रखरता और दिव्यता को और अधिक सतेज और स्पष्ट होता हुआ देखें। धीरे-धीरे यह धारणा मन में दृढ़ होती जाएगी कि शरीर व मन अधिक स्वस्थ, सबल हो रहे हैं। मस्तिष्क और अंत:करण अधिक सतेज एवं विकसित हो रहे हैं और आत्मजागरण की प्रक्रिया घटित हो रही है।

अंतर्निहित सद्गुणों एवं शक्तियों का जागरण—विकास हो रहा है तथा जीवन श्रेष्ठता से परिपूर्ण हो रहा है। दिन में जब भी समय मिले इस धारणा का अधिक-से-अधिक अभ्यास किया जा सकता है। इसके साथ अनुभव करें कि इस धारणा के बल पर मैं अपनी जीवन-साधना के पथ पर अग्रसर हो रहा हूँ। इस तरह की भावना के प्रगाढ़ होने पर साधक के जीवन में धारणा परिपक्व होती है और साधक समाधि की ओर बढ़ता है। ❑

अशरीरी आत्माओं से मिलता है सहयोग

मरण और पुनर्जन्म के बीच की अदृश्य सूक्ष्म कड़ी अपने में कितनी ही रहस्यमयी विलक्षणताओं को समाहित किए हुए है। सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं की इस दुनिया में ही भूत, प्रेत और पितर जैसी योनियाँ निवास करती हैं। इनमें से कितनी ही अदृश्य आत्माएँ आपत्कालीन परिस्थितियों में अपने स्नेहपात्रों का सहयोग करती हैं या उन्हें उचित मार्ग पर लाने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। ऐसी ही एक घटना जर्मनी के स्ट्रमवर्ग की है।

पॉल बी० अन्निस्टर कृत 'स्ट्रेन्ज हैपनिंग्स' के अनुसार जून, 1961 में जे० केलघन नामक व्यक्ति नशे में धुत होकर आधी रात बीते वापस अपने घर जा रहा था। इतने में पीछे से आवाज आई—रुको! वह आवाज एक नारी की थी। केलघन का नशा गायब हो गया; क्योंकि वह आवाज उसकी माँ की थी, जो कुछ वर्ष पूर्व ही दिवंगत हुई थी। माँ के अदृश्य स्वर गूँज उठे—"बेटा! तुमने नशे में अपनी समूची संपत्ति बरबाद कर दी है। तुम्हें नहीं मालूम कि तुम्हारे इन कारनामों से मरणोपरांत भी मुझे कितना कष्ट होता है।"

केलघन ने तत्क्षण संकल्प किया कि उस दिन से वह शराब कभी नहीं पिएगा, लेकिन माँ की प्रत्यक्ष उपस्थिति का प्रमाण जानने के लिए उसने कहा—"यदि तुम मेरी माँ हो तो अपने स्पर्श द्वारा मुझे आभास कराओ। मैं सभी बुरी आदतों को छोड़ देने का प्रण करता हूँ।"

इतना कहना था कि केलघन के सिर पर माँ का ममता भरा हाथ महसूस हुआ, जो उसे स्पष्ट रूप से आश्वस्त कर रहा था, साथ ही उसकी पीठ को सहला रहा था, मानो वे कह रही हों कि बेटे! हम सदैव तेरे साथ हैं, तू आगे बढ़। माँ ने पीठ पर जिस जगह अपना हाथ रखा था, उसके निशान कमीज पर उभर आए। घोर पियक्कड़ केलघन में अचानक कैसे सुधार हुआ, यह सबके लिए आश्चर्य का विषय बना रहा। वह अपनी बात सबको बताने लगा, लेकिन लोग हँसी-मजाक में उसकी बात को उड़ा देते।

केलघन जब अपनी कमीज पर अपनी माँ के उभरे हुए हस्तचिह्न को दिखाता, तब हर किसी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। अनुसंधानकर्त्ता विज्ञानियों का कहना है कि किसी भी प्राकृतिक तरीके से ऐसे निशान नहीं बनाए जा सकते। ठीक वैसे ही केलघन की परलोकवासी माता के हाथ के निशान उसकी कमीज पर बने। उस कमीज को आज भी लंदन के एक म्यूजियम में लोगों के दर्शनार्थ सुरक्षित रखा गया है। उसके नीचे इस घटना का संक्षिप्त विवरण भी लिखा हुआ है।

इसी प्रकार की एक और घटना पश्चिमी जर्मनी के एक अनाथालय के संचालक एडवर्ड नेपल्स की है, जिसकी गणना बेहद ईमानदार और प्रामाणिक व्यक्तियों में की जाती है। उस अनाथालय के लिए उसका योगदान अप्रतिम था, लेकिन जीवन के अंतिम चरण में उसने अनाथालय की संपत्ति का एक बड़ा भाग चुपके से अपने नाम कर लिया था।

कुछ समय पश्चात उसकी इस अप्रामाणिकता का भेद खुल गया। ट्रस्टिओं ने उसके पुत्र के नाम कोर्ट में दावा ठोक दिया, परंतु उनके पास कोई प्रमाण नहीं था, जिसके आधार पर यह सिद्ध हो सके कि एडवर्ड के पुत्र को प्राप्त संपत्ति अनाथालय की है।

पुत्र को इस बात की पूरी जानकारी थी, परंतु न्यायालय में बयान देते समय उसने इस बात से स्पष्ट इनकार कर दिया कि उसके पिता से प्राप्त संपत्ति अनाथालय की है। जिस समय वह अपना बयान कोर्ट में दे रहा था, ठीक उसी समय एक विलक्षण घटना घटी।

कोर्ट में एक तेज आवाज गूँजी तथा एक तमाचा लड़के के गाल पर पड़ा। यह दृश्य देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित थे। लड़के को यह समझते देर नहीं लगी कि उसके गाल पर जड़ा गया तमाचा उसके पिता का है। उसने अपनी गलती स्वीकार कर ली और अनाथालय की सारी संपदा वापस कर दी।

जीवन काल में जिनसे सघन आत्मीयता जुड़ी रहती है, मरणोपरांत भी इन प्रियजनों का सहयोग अशरीरी आत्माएँ करती देखी गई हैं। कभी-कभी ये दिवंगत आत्माएँ जनहित एवं राष्ट्रहित के कार्यों में अनायास ही अपने अस्तित्व का परिचय देती हैं और लोगों का मार्गदर्शन भी करती हैं।

ऐसी ही एक घटना सन् 1965 की है। भारत और पाकिस्तान के मध्य युद्ध चल रहा था। 13 नवंबर को भारतीय सैनिकों की एक छोटी टुकड़ी नक्शे एवं पोस्ट से प्राप्त निर्देशों एवं वायरलेस संपर्क के सहारे जम्मू-कश्मीर की घाटियों की ओर बढ़ रही थी, लेकिन आगे का मार्ग स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था। ऐसे में पीछे वापस लौटना भी खतरे से खाली नहीं था; क्योंकि भारतीय चौकी अभी 15 मील दूर थी। भय था कि कहीं पाकिस्तानी सैनिकों से मुठभेड़ न हो जाए। बरफबारी के कारण मार्ग अवरुद्ध था और अस्पष्ट भी। सभी सैनिक गहरी चिंता में डूबे किंकर्त्तव्यविमूढ़ बने खड़े थे। इतने में पेड़ों की झुरमुट से किसी की पदचाप सुनाई पड़ी।

सैनिकों ने देखा कि सामने एक भारतीय लेफ्टिनेंट खड़े हैं। उन्होंने कहा कि आगे का रास्ता खतरनाक है, जिससे आप लोग अपरिचित हैं। मेरे पीछे आइए। सैनिकों ने देखा कि लेफ्टिनेंट की पीठ पर कमीज में जलने का गोल निशान है। उन्होंने पूछने पर बताया कि पाकिस्तानी गोलाबारी में पीठ पर का हिस्सा जल गया था।

उन्होंने बात का रुख मोड़ते हुए कहना आरंभ किया कि कभी-कभी मृतात्माएँ भी आपत्कालीन परिस्थितियों में अपने स्नेहपात्रों का सहयोग करती हैं। इस विषय पर बात चलती रही, तब तक सामने चौकी आ गई। लेफ्टिनेंट ने चौकी की ओर इशारा किया तथा वहाँ स्वयं जाने में असमर्थता प्रकट की।

दस-पंद्रह गज चलने के बाद सैनिकों ने पीछे मुड़कर देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लेफ्टिनेंट का कहीं कोई नामोनिशान नहीं था। एक मिनट से भी कम समय लगा होगा। इतने कम समय में कहीं दूर जाने की संभावना भी नहीं थी। कुछ सैनिकों ने पता लगाने की कोशिश की, पर उनका कहीं कुछ भी पता नहीं चला।

चौकी पर पहुँचने के उपरांत कमांडर को पूरा विवरण बताया गया तो सैनिकों को जो सुनने को मिला, वह यह था कि कल ही दुश्मन की बमबारी के कारण पीठ पर गोला लगने से उक्त लेफ्टिनेंट की मृत्यु हो गई थी और उनका दाह-संस्कार भी कर दिया गया था।

अवश्य ही उस सहृदय लेफ्टिनेंट ने अशरीरी स्वरूप में उस सैनिक टुकड़ी का मार्गदर्शन किया और उन्हें सुरक्षित स्थान तक पहुँचाया। इतिहास ऐसे अनेकों विलक्षण उदाहरणों से भरा हुआ है। ❑

❋ अध्यात्म जादूगरी नहीं है और न कहीं आसमान से बरसने वाले वरदान-अनुदान। देवी-देवताओं का भी यह धंधा नहीं है कि चापलूसी करने वालों को निहाल करते रहें और जो इनके लिए ध्यान न दे सकें, उन्हें उपेक्षित रखें या आक्रोश का भाजन बनाएँ। वस्तुतः देवत्व आत्मजागरण की एक स्थिति विशेष है, जिसमें अपने ही प्रसुप्त वर्चस्व को प्रयत्नपूर्वक काम में लाया जाता है और सत्प्रयासों का अधिकाधिक लाभ उठाया जाता है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

❋ युग परिवर्तन जैसा महान कार्य होता तो भगवान की इच्छा, योजना एवं क्षमता के आधार पर ही है, पर उसका श्रेय वे ऋषिकल्प जीवनमुक्त आत्माओं को देते रहते हैं, यही उनकी साधना का, पात्रता का सर्वोत्तम उपहार है। हमें भी इस प्रकार का श्रेय, उपहार देने की भूमिका बनी और हम कृतकृत्य हो गए। हमें सुदूर भविष्य की झाँकी अभी से दिखाई पड़ती है, इसी कारण हमें यह लिख सकने में संकोच रंचमात्र भी नहीं होता। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

त्रिविध-बंधन एवं मुक्तिपथ

मानव व्यक्तित्व की संरचना स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणशरीर से मिलकर बनती है। इन त्रिविध धाराओं से मिलकर मानव जीवन का प्रवाह आगे बढ़ता है। इनकी सम्यक समझ व्यक्ति को जीवन के अंतिम गंतव्य की ओर ले जाती है अन्यथा जीवननैया तमाम तरह के भँवरों के बीच हिचकोले खाते हुए बीच राह में ही भटकती रहती है।

इसके प्रमुख कारण बनते हैं तीनों शरीरों से जुड़े तीन बंधन, जिन्हें शास्त्रों में मोटेतौर पर वासना, तृष्णा और अहंता के रूप में चिह्नित किया गया है। ये बंधन जीवन को एक संकीर्ण दायरे में बाँधे रखते हैं। मनुष्य स्वतंत्रता चाहता है, मुक्त गगन में पंछी बनकर उड़ान भरना चाहता है, लेकिन इन बंधनों की बेड़ियों में जकड़ा जीवन अपने ही बनाए पिंजड़े से बाहर निकलने के लिए फड़फड़ाता रहता है।

वासना की ज्वाला व्यक्ति की जीवनीशक्ति एवं स्वास्थ्य को बुरी तरह से तहस-नहस करती है। उसे रुग्ण, जर्जर एवं दुर्बल बनाती है। इसके साथ ही मन भी दूषित एवं कुसंस्कारी हो जाता है। इस ज्वाला में विषय भोग का कितना ही ईंधन डालते जाएँ, यह शांत नहीं होती, बल्कि और विकराल रूप लेती जाती है।

इसके चलते पारिवारिक संबंधों का ताना-बाना तार-तार होता रहता है, सामाजिक व्यवस्था विशृंखलित होती रहती है। तृष्णा की माया हर पल व्यक्ति को असंतोष की आग में जलाती रहती है। लोभ एवं अति महत्त्वाकांक्षाएँ व्यक्ति को जीवन की चकाचौंध में उलझाए रहती हैं। बाह्य जीवन की उपलब्धियों में संतोष नहीं हो पाता और दूसरों के साथ अनावश्यक प्रतिद्वंद्विता एवं तुलना-कटाक्ष की अंतहीन दौड़ में अंततः जीवन चुक जाता है, लेकिन तब भी तृष्णा शांत नहीं होती।

अहंता क्षुद्र स्व एवं मेरे-तेरे के जंजाल में व्यक्ति को उलझाए रखती है। अपने वास्तविक स्वरूप को भूला, अपने आदिस्रोत से कटा हुआ व्यक्ति, राग-द्वेष, ममता-आसक्ति के बंधनों में पाशबद्ध रहता है। अपनों का वियोग-विछोह एवं काल के संघातिक प्रहार खाकर अहंकार की माया कुछ-कुछ समझ आती है।

इन त्रिविध बंधनों से उबरने के लिए युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने उपासना, साधना और आराधना का विधान बताया है, जिसकी त्रिवेणी में नित्य स्नान करते हुए व्यक्ति को समझ में आता है कि वासना का बीज चिनगारी की भाँति खतरनाक है। यदि इसे प्रश्रय दिया गया तो यह पूरे अस्तित्व को सुलगाने वाली है और सारे तप-पुण्य की संचित राशि को दग्ध कर अस्तित्व को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली है।

इसी तरह महत्त्वाकांक्षा एवं लोभवृत्ति कितनी भी आकर्षक क्यों न प्रतीत हो रही हो, प्रकारांतर में वह व्यक्ति को जड़, शुष्क एवं घोर स्वार्थी ही बनाती है। जीवन की स्थिरता, शांति एवं आध्यात्मिक संभावनाओं का यह हनन करती है। अहंता भी अंततः व्यक्ति को संकीर्णता, क्षुद्रता एवं

लक्ष्य का महत्त्व कठिनाइयों से और पुरुष का गौरव उनको पार कर लक्ष्य पाने में ही होता है।

अशांति के दायरे में कैद रखती है और अपने वास्तविक स्वरूप के बोध से वंचित रखती है तथा जब अंततः कर्मों का हिसाब-किताब होता है, तब व्यक्ति ठगा-सा अनुभव करता है।

शास्त्रों में इनसे उबरने के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग जैसे उपायों को सुझाया है, जिन्हें परमपूज्य गुरुदेव ने सरल रूप में उपासना-साधना-आराधना की त्रिवेणी तथा और विस्तृत रूप में साधना, स्वाध्याय, संयम एवं सेवा के रूप में प्रतिपादित किया है। नित्य कुछ समय इनके लिए निकालने पर वह उपक्रम बन पड़ता है कि त्रिविध बंधनों की जकड़न ढीली पड़ने लगे।

हम प्रार्थना करें कि इनसे बाहर निकलने का हमारा पथ प्रशस्त हो तो हम अपने जन्मसिद्ध अधिकार आत्मबोध को प्राप्त करते हुए मुक्तिपथ पर आगे बढ़ सकते हैं। ❑

ईशकृपा बिनु गुरु नहीं, गुरु बिनु नहीं ज्ञान

संत नामदेव भारत के आध्यात्मिक क्षितिज पर चमकते-जगमगाते हुए एक अद्भुत संत हैं। उनका जन्म सन् 1269 के लगभग महाराष्ट्र में कृष्णा नदी पर स्थित नरस वामनी गाँव, जिला सतारा में हुआ था। उनके माता-पिता भगवान विट्ठल के उपासक थे।

परिवार के आध्यात्मिक वातावरण व अपने मूल नैसर्गिक आध्यात्मिक संस्कारों के कारण नामदेव की धर्म-अध्यात्म में गहरी अभिरुचि थी। वे भी बचपन से ही भगवान विट्ठल की पूजा, उपासना, भक्ति किया करते थे। नामदेव जी का परिवार बाद में पंढरपुर में आकर रहने लगा था।

नामदेव सात साल की उम्र में ही विट्ठल भगवान के भजन गाने लगे थे। उनकी माँ हर दिन विट्ठल भगवान को दूध का भोग लगाया करती थीं। एक दिन उनकी माँ किसी घरेलू काम में व्यस्त थीं, इसलिए उन्होंने नामदेव जी को भगवान विट्ठल को दूध का भोग लगाने को कहा। नामदेव जी के लिए विट्ठल भगवान किसी पाषाण या धातु की प्रतिमा मात्र नहीं थे, वरन उनकी भक्तिपूर्ण दृष्टि में तो मूर्तिरूप में साक्षात् नारायण ही उनके सामने विराज रहे थे।

वे प्रेम से भरे हृदय लिए, हाथ में दूध का कटोरा लिए विट्ठल भगवान की प्रतिमा को दूध अर्पित करने चले। नामदेव जी ने भगवान की प्रतिमा को जैसे ही दूध अर्पण किया, वैसे ही उस प्रतिमा से नारायण (विट्ठल भगवान) ज्योतिर्मय रूप में प्रकट हो गए। उन्होंने प्रकट होकर नामदेव द्वारा अर्पित भोग को ग्रहण किया।

भगवान ने गीता में स्पष्ट घोषणा की है कि जो कोई भी मुझे भक्तिपूर्वक, प्रेम से जल, अक्षत, पुष्पादि अर्पण करता है, उसे मैं अवश्य ग्रहण करता हूँ। अपने दिए गए आश्वासन से भला प्रभु पीछे कैसे हट सकते थे। निश्छल, निष्कपट व प्रेम से भरे हृदय लिए नामदेव के प्रेम को वे कैसे अस्वीकार कर सकते थे?

नामदेव जी ने खुश होकर जब यह वृत्तांत अपने माता-पिता को सुनाया तो वे भी अपने पुत्र की सच्ची भगवद्भक्ति और उसकी निष्कपट, निश्छल, निष्काम भक्ति को प्रभु द्वारा स्वीकार किए जाने पर आनंदित हुए, आह्लादित हुए, प्रफुल्लित हुए।

नामदेव जी ने बड़े होने तक किसी गुरु का वरण नहीं किया था। कई संत उन्हें किसी को गुरु रूप में वरण करने की सलाह देते, पर नामदेव जी विट्ठल भगवान की प्रतिमा के समक्ष जाकर कहते—"प्रभु मुझे आपके दर्शन हो ही गए हैं तो मुझे गुरु की क्या जरूरत है?"

इसी चिंतन में डूबे हुए, भगवान का ध्यान-स्मरण करते हुए नामदेव गहरी निद्रा में चले गए। भगवान विट्ठल उनके स्वप्न में प्रकट हुए और बोले—"वत्स! तुम्हें भले ही मेरा दर्शन प्राप्त हुआ है, पर जब तक तुम किसी सद्गुरु को वरण नहीं कर लेते, तब तक तुम तत्त्वत: मेरे वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान सकते।"

नामदेव जी कहने लगे—"प्रभु! मैं तो आपको कहीं भी पहचान सकता हूँ।" इस पर भगवान ने नामदेव से कहा—"आज मैं तेरे आगे से निकलकर जाऊँगा। तुम मुझे पहचान सको तो पहचानना।" भगवान एक घुड़सवार के रूप में नामदेव के आगे से गुजरे तो नामदेव भगवान को पहचान न सके। इस पर नामदेव जी गुरु करने को मान गए। भगवान ने उन्हें विसोबा खेचर को गुरु रूप में वरण करने को कहा। नामदेव जी ने ऐसा ही किया।

गुरु की कृपा से, गुरु के मार्गदर्शन से नामदेव की भगवद्भक्ति, साधना, तपस्या, उपासना प्रगाढ़ होती गई। जिन भगवान नारायण को, विट्ठल भगवान को वे सिर्फ मूर्तियों में देखते थे, उन्हें वे यत्र-तत्र-सर्वत्र देखने लगे। वे भगवान के सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान स्वरूप की पल-पल अनुभूति करने लगे।

वे भगवान को सभी जीवों में देखने लगे। वे सृष्टि के कण-कण में उनकी उपस्थिति का आभास करने लगे। सचमुच यदि साधक में सच्ची पात्रता हो, सच्ची श्रद्धा हो, सच्ची भक्ति हो तो स्वयं नारायण भी सद्गुरु के माध्यम से उन्हें अपने वास्तविक स्वरूप का परिचय करवाते हैं और भगवद्तत्त्व का बोध प्रदान करते हैं। धन्य है ऐसी श्रद्धा,

धन्य है ऐसी भक्ति, धन्य है सद्गुरु की कृपा, सद्गुरु का मार्गदर्शन।

ठीक ही तो कहा गया है—

ईश कृपा बिनु गुरु नहीं,
गुरु बिनु नहीं ज्ञान।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं,
गावहिं वेद-पुराण॥

अर्थात ईश्वर की कृपा के बिना सद्गुरु की प्राप्ति नहीं होती, बिना सद्गुरु के सत्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती और बिना उस सत्य ज्ञान के साधक आत्मा व परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाता। ऐसा ही वेद-पुराण गाते हैं। संत नामदेव जी के इस जीवन वृत्तांत से सभी साधक इस सत्य को अनुभव कर सकते हैं कि बिना गुरु के ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। ❑

एक बार माता पार्वती ने भगवान शिव से पूछा—''भगवन्! लोग इतना कर्मकांड करते हैं, फिर भी इन्हें आस्था का लाभ क्यों नहीं मिलता?'' भगवान शिव ने उत्तर दिया—''धार्मिक कर्मकांड होने पर भी मनुष्य जीवन में जो आडंबर छाया है, यही अनास्था है। लोग धार्मिकता का दिखावा करते हैं, उनके मन वैसे नहीं हैं।'' इस बात की परीक्षा लेने दोनों धरती पर आए। माता पार्वती ने सुंदरी साध्वी पत्नी का व भगवान शिव ने कोढ़ी का रूप धारण किया। मंदिर की सीढ़ियों के समीप माता पार्वती अपने पति भगवान शिव को लेकर उसी रूप में बैठ गईं। दानदाता-दर्शनार्थ आते रहे व रुककर कुछ पल माता पार्वती को देखते, फिर भगवान शिव के कोढ़ी रूप को घृणा की दृष्टि से देखकर आगे बढ़ जाते। कुछ दानदाताओं ने तो सुंदर रूप धरे माता पार्वती को संकेत भी किया कि कहाँ इस कोढ़ी पति के साथ बैठी हो। इन्हें छोड़ दो। माता पार्वती यह कुछ सहन नहीं कर पाईं व भगवान शिव से बोलीं—''प्रभु! अब कैलास पर लौट चलिए, इन पाखंडियों का यह कुत्सित स्वरूप सहन नहीं होता।'' इतने में ही एक दीन-हीन भक्त वहाँ आया। उसने माता पार्वती के चरण छुए और बोला—''माता! आप धन्य हैं, जो पतिपरायण हो इनकी सेवा में लगी हैं। यदि आप आज्ञा दें तो मैं इनके घावों को धो दूँ। फिर मेरे पास जो भी कुछ भोजन है, उसे आप हम साथ-साथ खा लेंगे।'' ब्राह्मण यात्री ने घावों पर पट्टी बाँधी व भोजन थमाकर पुनः प्रणाम कर ज्यों ही आगे बढ़ा, वैसे ही भगवान शिव ने कहा—''यही है भार्ये! एकमात्र भक्त, जिसने मंदिर में प्रवेश से पूर्व निष्कपट भाव से सेवा धर्म को प्रधानता दी। ऐसे लोग गिने चुने हैं। शेष तो सब आत्मप्रवंचना भर करते हैं व अवगति को प्राप्त होते हैं।'' भगवान शिव एवं माता पार्वती ने अपने वास्तविक स्वरूप में उस भक्त को दर्शन दिए और परम गति का अनुदान दिया व वापस लौट गए।

चेतना की शिखर यात्रा – 228

कुछ अदृश्य पन्ने

विगत अंक में आपने पढ़ा कि सन् 1975 के कार्तिक मास की गोपाष्टमी के दिन शांतिकुंज में पूज्य गुरुदेव के निवासस्थल पर उनका आशीर्वाद लेने एक सूक्ष्मशरीरधारी का आगमन हुआ। पूज्यवर के समक्ष नतमस्तक भाव से उपस्थित ये और कोई नहीं, बल्कि 1870-80 के दशक में ब्रिटिश प्रशासनिक सेवा में रहे सर एलन आक्टेवियन ह्यूम थे, जिन्होंने अपने कामकाजी जीवन के दौरान तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के क्रियाकलापों, नीतियों और फैसलों से जनता में फैले असंतोष को अनुभव किया था व इसके समाधान हेतु कुछ प्रभावशाली नेताओं के साथ मिलकर अथक प्रयत्नों से सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी। अपने शुभ संस्कारों के परिणामस्वरूप उन्होंने न केवल सिद्ध संतों का सान्निध्य प्राप्त किया, वरन दैवी योजना के सहभागी बनकर उसे पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वहन भी कर रहे थे। परिवर्तन की दैवी योजना में रही अपनी भूमिका व भविष्य के संदर्भ में मार्गदर्शन प्राप्त करने के उद्देश्य से उनका पूज्यवर के पास आना हुआ। आइए पढ़ते हैं इससे आगे का विवरण .....

इस पृष्ठभूमि के बाद हम 1975 की गोपाष्टमी की सुबह पर वापस आते हैं। गुरुदेव के कक्ष में ए०ओ० ह्यूम की वायवीय उपस्थिति में शांतिकुंज के एकाध वरिष्ठ कार्यकर्त्ता भी पहुँचे। उन्हें आभास तक नहीं हुआ कि यहाँ कोई है और गुरुदेव से कोई अनुरोध या संवाद कर रहा है। कार्यकर्त्ता अपनी बात कहकर और गुरुदेव के निर्देश लेकर चले गए। इससे ह्यूम को अपना संवाद जारी रखने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

तिब्बत के पास एक रहस्यमय क्षेत्र में विश्व को नया रूप देने के लिए तप कर रहे महात्माओं के बारे में उन्होंने कहा कि वे एक बार गुरुदेव को अपने बीच देखना चाहते हैं। वे यहाँ भी आ सकते हैं, लेकिन उनकी संख्या इतनी अधिक है कि सब या अधिकांश अथवा उनके चुने हुए प्रतिनिधि भी यहाँ पहुँचे तो मार्ग में उथल-पुथल मच जाएगी। जिस मार्ग से वे आएँगे, वहाँ का वातावरण उनके उपयुक्त नहीं है, उनकी उपस्थिति या प्रवास का स्पर्श उसमें परिवर्तन लाएगा और वह परिवर्तन मार्ग में रहने वाले व्यक्तियों को सहन नहीं होगा। इसलिए बेहतर यही होगा कि गुरुदेव स्वयं उस क्षेत्र में चलें और महात्माओं से संवाद करें। ह्यूम ने बताया कि उस क्षेत्र में 24 हजार 118 सिद्ध पार्षद तप-अनुष्ठान में निरत हैं और वे समय-समय पर दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में जाते रहते हैं।

ह्यूम ने अपनी वायवीय सत्ता को भी उस सिद्ध क्षेत्र का अनुग्रह ही बताया। कहा कि वे उन महात्माओं के प्रतिनिधि और संदेशवाहक के रूप में ही काम करते हैं। यह भी कि 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में उनका योगदान निमित्तमात्र था। इतिहास उन्हें इस स्थापना का श्रेय देता है, लेकिन वास्तव में तो वह समय की धारा का सूत्र संचालन करने वाले उन दिव्य पुरुषों की योजना का ही अंग था।

इस वार्त्तालाप में यह भी स्पष्ट हुआ कि थियोसाफी सोसाइटी की संस्थापक मैडम ब्लेवट्स्की, हेनरी स्टील आस्कर, लेड बीटर, एनी बीसेंट और विलियम कून आदि के अलावा भारतीय मूल के सिद्ध संतों और योगियों को भी उन महात्माओं से संदेश मिलते थे। इन योगियों में श्री अरविंद भी थे, जो 1908 में अचानक स्वतंत्रता आंदोलन और राजनीति से पूरी तरह अलग होकर पांडिचेरी चले गए। उन्हें आभास हो गया था कि भारत की स्वतंत्रता निश्चित है। वातावरण को आध्यात्मिक दृष्टि से सुसंपन्न और उर्वर बनाने के लिए गुह्य साधनाएँ आवश्यक हैं। सूक्ष्मदृष्टि से वे इस ज्यादा महत्त्वपूर्ण

काम के लिए राजनीतिक क्रियाकलापों से अलग हुए थे। राजनीति में वापस लौटने का आग्रह लेकर गए कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं में, जिनमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भी थे, से उन्होंने कहा था कि अज्ञात और अदृश्य सत्ता ने भारत के भाग्य में स्वतंत्र होना पहले ही लिख दिया है। उसके लिए प्रत्यक्ष जगत् में अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग भूमिकाएँ निश्चित कर दी गई हैं। कुछ अध्यात्म प्रधान व्यक्तियों को भारत की सूक्ष्मनियति के लिए काम करने का दायित्व दिया गया है।

उन्हें वापस लाने का प्रयत्न करते हुए कई राजनेताओं को यह रहस्य गले नहीं उतरा था, लेकिन लोकमान्य तिलक ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया था। वे धार्मिक और सांस्कृतिक अनुष्ठानों से लोक-शिक्षण का प्रयास पहले ही कर चुके थे। गणेशोत्सव, गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र और पाठशाला तथा व्यायामशालाओं के माध्यम से लोगों को बल की उपासना और संगठन के लिए तैयार करने की मुहिम उन्होंने 1890 के आस-पास ही शुरू कर दी थी।

ह्यूम का रहस्योद्घाटन

ए०ओ० ह्यूम ने जब गुरुदेव से इस विषय पर चर्चा छेड़ी तो यह भी कहा कि आप स्वयं भी तो 1940 के आस-पास अपने मास्टर (थियोसाफिस्ट गुरु और मार्गदर्शक सत्ता के लिए इसी संबोधन का प्रयोग करते थे) के कहने पर इसीलिए राजनीति से अलग हुए थे। लेकिन मैं यह बात दुनियादारी के हिसाब से कह रहा हूँ, वरना सच्चाई तो यही है न कि आप और मास्टर में क्या अंतर है? कहते हुए ह्यूम ने अपनी आँखों की पुतलियों को अजीब ढंग से नचाया और दोनों हाथों की हथेलियों को दाएँ-बाएँ हिलाते हुए कहा—'कुछ नहीं।'

कहते हुए ह्यूम बस हँस दिए। इसके बाद उन्होंने अपने कोट की जेब से एक कागज निकाला और गुरुदेव के सामने रखा। कागज दरअसल किसी पत्र की प्रतिलिपि था। गुरुदेव ने वह कागज उठाया और देखने लगे। पत्र की कुछ पंक्तियाँ देखते ही उन्होंने कहा—''यह तो स्वामी विवेकानंद की लिखावट लगती है।'' ए०ओ० ह्यूम ने पुष्टि की और कहा—''हाँ यह पत्र उन्होंने 1849 में अपने एक गुरुभाई स्वामी तुरीयानंद को लिखा था।''

''अमेरिका में तब उनका काम फैल रहा था। रामकृष्ण मठ और मिशन की शाखाएँ खुल रही थीं। कैलिफोर्निया में एक श्रद्धालु अमेरिकी ने उन्हें 160 एकड़ जमीन दान में दी थी, ताकि वहाँ रामकृष्ण मिशन की सांगोपांग स्थापना हो सके। और दिशाओं से भी सहयोग मिल रहा था, लेकिन उन्होंने भारत वापस आने का मन बना लिया था। स्वामी तुरीयानंद उन दिनों स्वामी जी के साथ ही प्रवास पर थे और सैन फ्रांसिस्को में वेदांत आश्रम की व्यवस्था बनाने में लगे हुए थे।'' गुरुदेव ने वह पत्र एक नजर से देखा और फिर ह्यूम की ओर दृष्टि घुमाई। अपनी ओर देखते पाकर ह्यूम ने कहा—''गुरुदेव यह स्वामी विवेकानंद के पत्र की प्रतिलिपि है। पारलौकिक शक्तियों ने इसे तैयार किया है और मुझे आपको दिखाने के लिए सौंपा है।''

''पत्र में स्वामी विवेकानंद कुछ अधीर और उतावले से दिखाई दे रहे हैं। लगता है वे जल्दी में हैं। जैसे इनके पास समय की कमी हो और वे कुछ काम तुरत-फुरत पूरे कर लेना चाहते हों।''—गुरुदेव ने कहा।

ह्यूम ने कहा—''हाँ यह सही है। हिमालय के योगियों का कहना है कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानंद जी को समय से पहले ही साक्षात्कार करा दिया था और उस साक्षात्कार को फिर मिटा भी दिया था। कहा था कि सोलह वर्ष बाद जब समय आएगा तो तुम्हें इस अनुभूति का कोश फिर हासिल हो जाएगा। तब तक भगवान का काम करो। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने जो समय सीमा निर्धारित की थी, वह पूरी हो रही थी। इधर उनका स्वास्थ्य भी लड़खड़ा रहा था, इसलिए स्वामी जी अपनी मातृभूमि और गुरुभूमि लौटने के लिए अधीर थे।''

गुरुदेव ने पूछा—''इस पत्र में स्वामी जी ने दोबारा आने की बात लिखी है, परंतु भारत आने के बाद तो वे कभी विदेश लौटे ही नहीं। उनके भारत आने की बात का क्या रहस्य है?''

ए०ओ० ह्यूम ने कहा—''स्वामी विवेकानंद अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सान्निध्य में ज्यादा नहीं रह सके थे। मुश्किल से तीन-चार वर्ष और वह भी टुकड़ों-टुकड़ों में ही इन्हें गुरु का सान्निध्य मिला। इसके अलावा उनके मन में शुरू में संदेह भी था। निराकरण होने और समर्पण संपन्न होने के बाद गुरु के प्रत्यक्ष सान्निध्य की उनकी लालसा बनी रही। इसलिए वे चाहते थे कि एक जन्म और हो, जिसमें अपने गुरु का काम पूरे मन से, पूरा समय लगाकर और पूरी आयु भर करते रहें। यह तो आप भी जानते हैं कि

आदिशंकराचार्य की भाँति स्वामी विवेकानंद के लिए भी विधाता ने सत्रह-अठारह साल की जीवन अवधि नियत की थी। उनके आध्यात्मिक अभिभावकों ने विधि का विधान उलटकर जीवन अवधि बढ़ाई। भगवान रामकृष्ण की कृपा से ही स्वामी विवेकानंद जीवित रह सके।

"पत्र में उन्होंने जिस वापसी की बात कही है, वह स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अगले अवतार के समय की ओर इशारा करती है। उनका आशय था कि परमहंस देव जब एक बार फिर इस धरती पर आएँगे तो वे अर्थात विवेकानंद भी लौटेंगे। कहते-कहते ए०ओ० ह्यूम अचानक रुक गए। इस विषय को यहीं छोड़कर बोले—संदेश और संप्रेषण का यह तरीका हम लोग पहले भी अपनाते रहे हैं। आपके सामने उपस्थित इस शख्सियत ने अपने लौकिक जीवन में 1883 में वायसराय रिपन को एक पत्र पढ़ाया था। जिसमें भावी विपत्तियों से बचने के लिए अँगरेजी राज में सुधार लाने की बात कही गई थी। उस समय के कई धुरंधरों को थियोसाफिस्टों ने समय रहते सचेत किया और आज भी कर रहे हैं।" (क्रमशः)

फारस के विख्यात संत इबादीन सदा खुदा की इबादत और दीन-दुखियों की सेवा-सहायता में लगे रहते थे, उनके पास अनेक लोग विभिन्न समस्याएँ लेकर आते एवं संत उनकी समस्याओं का समाधान करते थे। धीरे-धीरे उनकी ख्याति फारस के शाह तक जा पहुँची। शाह की भी संत से मिलने की इच्छा हुई।

एक दिन वे ढेर सारे उपहार—कपड़े, खाने-पीने का सामान आदि लेकर संत की कुटिया में पहुँच गए। उन्होंने संत के चरणों में कीमती शॉल रखते हुए पुराना शॉल उतार देने के लिए कहा। इस पर संत ने शाह से पूछा—"तुम्हारे यहाँ तो अनेक सेवक होंगे।" शाह ने हाँ में उत्तर दिया।

संत ने फिर पूछा—"अगर कोई नया आदमी नौकरी माँगने आ जाए तो क्या तुम पुराने वफादार सेवकों को नौकरी से हटा दोगे?" शाह ने कुछ सोचते हुए कहा—"नहीं, उन्हें क्यों हटाऊँगा, वे पहले की तरह ही मेरी सेवा करते रहेंगे। नए व्यक्तिओं के आ जाने पर पुराने वफादार व्यक्तियों को हटा देना समझदारी नहीं है।"

इस पर संत बोले—"इसी तरह तुम्हारे नए कीमती कपड़ों के मिलने पर क्या पुराने कपड़ों को छोड़ देना उचित होगा? ये भी वफादार सेवक की तरह ही हैं। तुम अपने ये कपड़े छोड़कर जा सकते हो, परंतु पुराने कपड़े अपना समय पूरा करके ही हटेंगे।" संत की सादगी के समक्ष शाह नतमस्तक हो गए। वे सारा सामान वहीं छोड़कर चले गए।

जल चिकित्सा के प्रयोग

जल मानव शरीर की समस्त जैविक क्रियाओं का आधार है। जीवन के लिए जरूरी आधारभूत पोषक तत्त्वों का वाहक भी जल ही होता है, इतना ही नहीं जल शरीर के तापमान को नियंत्रित रखने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है।

इस कारण जल को चिकित्सा के रूप में प्रयोग किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति पूर्णत: भारतीय चिकित्सा पद्धति है, इसमें वायु, जल, मिट्टी तथा धूप के माध्यम से रोगों का उपचार किया जाता है। इसकी उपयोगिता को देखकर विदेशी विद्वानों ने इसे खूब अपनाया भी है।

यूनान, अरब, जर्मनी, इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशों में इसका खूब प्रचार-प्रसार भी हुआ, परंतु लुईकुने के आविर्भाव से पूर्व प्राकृतिक चिकित्सा जिसका प्रमुख अंग जल चिकित्सा है का वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित विकास नहीं हो पाया था।

लुईकुने जर्मनी के नागरिक थे और उन्होंने 10 अक्टूबर, 1886 में अपना नेचर क्योर नामक प्राकृतिक चिकित्सालय खोल दिया था। उन्होंने जल चिकित्सा पर विशेष जोर दिया। स्नान की विभिन्न विधियाँ—भाप स्नान, कटि स्नान, मेहन स्नान आदि उन्होंने अपनाई और आगे फिर उसका विस्तार होता गया।

प्रकृति में वायु के बाद जल का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। पृथ्वी पर 3/4 भाग जल एवं केवल 1/4 भाग थल (जमीन) है। प्राकृतिक चिकित्सा विधि में जल का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता है। हमारी शारीरिक रचना में भी जल की विपुलता है। शरीर के वजन का 2/3 भाग जल एवं सिर्फ 1/3 भाग ठोस है।

दाँत को शरीर का सबसे ठोस पदार्थ कहा जा सकता है, इसमें 10 प्रतिशत जल का अंश है, शरीर के अन्य भागों की हड्डियों में 18 प्रतिशत से अधिक जलीय अंश रहता है। मनुष्य की आयु वृद्धि के साथ-साथ शरीर के जलीय अंश में किंचित कमी एवं ठोस अंश में थोड़ी वृद्धि होने लगती है।

बच्चों तथा जवानों में ठोस की अपेक्षा जलीय अंश अधिक होता है। हमारी दैनिक खुराक में जिसको हम ठोस वस्तु मानते हैं, उसमें भी 50 से 60 प्रतिशत जलांश रहता है। इसके अतिरिक्त जल या अन्य पेय के रूप में शरीर को जल की आवश्यकता रहती है।

इस प्रकार शरीर में जल की विपुलता के कारण दैनिक आहार, स्नान तथा स्वच्छता आदि में जल का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जाता है। जलोपचार (जलधौति, एनिमा, वाष्प स्नान, जल की पट्टियाँ, लपेट तथा स्नानादि) द्वारा निम्नलिखित हेतु सिद्ध किए जाते हैं—

आमाशय साफ करना। बड़ी आँत, मलाशय आदि से मल निकालकर उनको साफ करना। अधिक जल पीकर मूत्राशय मार्ग से जल निकालकर उसको स्वस्थ करना। शरीर के अंगों को तथा त्वचा को साफ करना, चर्म छिद्र (रोम छिद्र) खुले एवं साफ रखना, जिससे रक्त के विजातीय द्रव्य आसानी से बाहर निकल सकें।

बुखार की अवस्था में बढ़े हुए शारीरिक ताप को कम करना एवं ठंढ लगने पर उसमें उष्णता पैदा करना। सब अंग-प्रत्यंगों में रक्ताभिसरण प्रमाण में रखना एवं रक्ताभिसरण क्रिया में आवश्यक वृद्धि करना। आकस्मिक चोट या अन्य कारणों से एक ही स्थान में अधिक रक्त संचित होने पर वहाँ पर भार तथा वेदना कम करना।

हमारे शास्त्रों में लिखा है—

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।

अर्थात अजीर्ण में जल दवा का काम करता है और भोजन पचने के बाद जल पीने से शरीर को बल प्रदान करता है। बहुत से रोगों में यह दवा का काम करता है। ठंढे और गरम जल में अलग-अलग औषधीय गुण होते हैं।

कई रोगों में ठंढा जल और कई रोगों में गरम जल दवा का काम करता है। यदि धूप में निकलने से पहले पानी पी लिया जाए तो लू कभी नहीं लगती। लू शरीर में पानी के अभाव के समय लगती है। बाहर देर तक रहना पड़े, तो बीच में अवश्य ही पानी पीना चाहिए। आग से झुलसने पर जले अंगों को ठंढे जल में कम-से-कम एक घंटा डुबोकर रखना चाहिए। इससे शांति मिलेगी, जलन दूर होगी और घाव या फफोला नहीं होगा।

यदि पूरा शरीर जल जाए तो, तुरंत उसको बड़े जल के हौज या तालाब में डुबो दें, श्वास लेने के लिए नाक को जल से बाहर रखें। यह याद रखें कि झुलसा अंग जल में एक या दो घंटे डूबा रहे। उस पर पानी नहीं छिड़कना चाहिए, इससे हानि होती है। इसी तरह हाथ या पैर में मोच आ जाने पर या चोट लगने पर तुरंत उस स्थान पर ठंढे जल की पट्टी लगा देनी चाहिए।

चोट या मोच के स्थान पर बरफ भी लगा सकते हैं। इससे न तो सूजन होगी न दरद बढ़ेगा। अगर गरम तेल की पट्टी लगाएँगे या सेंक करेंगे तो सूजन आ जाएगी और दरद बढ़ जाएगा। यदि चोट लगने या कटने से खून आ जाए तो टिटनेस का इंजेक्शन लगवाने के बाद ठंढे जल की पट्टी लगाएँ या बरफ से सेंक करें।

गरम जल का लाभ वात रोगों, जोड़ों का दरद, कमर दरद, घुटने का दरद, गठिया, कंधे की जकड़न में होता है, इसमें गरम जल या भाप का सेंक दिया जाता है। यदि रात में नींद नहीं आती तो सोने से पहले दोनों पैरों को घुटनों तक सहने योग्य गरम जल से भरी बालटी या टब में पंद्रह मिनट डुबाए रखें, इसके बाद पैरों को बाहर निकालकर पोंछ लें और सो जाएँ, नींद आ जाएगी।

यह ध्यान रखें कि जब गरम पानी में पैर डुबाएँ, तब सिर पर ठंढे पानी में भिगोकर निचोड़ा हुआ तौलिया अवश्य रखें। रात में गरम जल पीने से बढ़ी वायु नष्ट होती है, जिससे अनावश्यक रूप से बढ़ी हुई चरबी आदि से सहज ही मुक्ति मिल जाती है तथा पेट, जाँघों आदि पर चरबी जमना बंद हो जाता है।

अजीर्ण, अपच, अफारा, कब्ज इत्यादि उदर विकार जैसे बलगम बनना, कोलेस्ट्रॉल (एल.डी.एल.) बढ़ना, नजला बना रहना, सिरदरद होना जैसे विकारों से मुक्ति मिलती है। अत: नियमित रूप से गरम जल रात में पीते रहना चाहिए। जल के बिना जीवन की कल्पना भी संभव नहीं है। जल का समुचित प्रयोग करके इसका लाभ लेना ही जल चिकित्सा है। जलरूपी इस प्राकृतिक चिकित्सा का प्रयोग करके हमें अपने स्वास्थ्य का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना चाहिए। ❑

आदिगुरु शंकराचार्य तीर्थों का पुनरुद्धार करते हुए काशी पधारे। काशी में गंगातट पर विचरण करते हुए उनकी दृष्टि गंगा के उस पार गई। गंगा के दूसरी ओर एक भद्र पुरुष खड़े हुए थे, जो उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम कर रहे थे। आचार्य शंकर ने जैसे ही उन्हें देखा, वैसे ही उन्होंने उन्हें अपनी ओर आने का संकेत किया।

वह भद्र पुरुष सनंदन थे, जो शंकराचार्य से दीक्षा लेने ही काशी आए थे। साक्षात् गुरु की आज्ञा पाते ही सनंदन ने गंगा में पाँव डाल दिए। उनकी भक्ति और आचार्य शंकर के तप के प्रभाव से उनके पैर डालते ही गंगा में वृहदाकार कमलपत्र उत्पन्न हो गए। सनंदन उन्हीं कमलपत्रों पर पैर रखते हुए शंकराचार्य के चरणों में आ गिरे। शिष्य की पात्रता और गुरु के गुरुत्व की साक्षी उस दिन काशी बनी। सनंदन आचार्य शंकर से दीक्षित होकर अद्वैत मत के विशिष्ट प्रचारक बने। कमलपत्रों द्वारा गंगा पार करने के कारण उनका नाम 'पद्मपाद' पड़ा।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 149

आध्यात्मिक मनोचिकित्सा का प्रभाव

विद्यार्थी जीवन में अनेक संघर्ष और चुनौतियाँ मौजूद होते हैं। ये चुनौतियाँ बाहरी और आंतरिक दोनों तरह की होती हैं, जिनसे प्राय: सभी विद्यार्थियों को होकर गुजरना पड़ता है। बाहरी चुनौतियाँ वातावरण एवं परिस्थितिजन्य होती हैं, जिनके समाधान में वह परिवार जनों, मित्रों व अपनों का सहयोग प्राप्त कर सकता है; लेकिन आंतरिक चुनौतियाँ ऐसी होती हैं, जिनसे विद्यार्थी को स्वयं ही संघर्ष करना पड़ता है और उबरना भी होता है।

जो विद्यार्थी इनसे नहीं उबर पाता है, वह कुंठा, ईर्ष्या, आत्महीनता, तनाव, असमायोजन, क्रोध, भय जैसी अनेकों व्यक्तित्व संबंधी आंतरिक समस्याओं से घिरने लगता है और यदि उनका सही समाधान न हो तो आगे चलकर ये समस्याएँ जीवन में गंभीर-घातक परिणाम उत्पन्न करती हैं। अत: आवश्यकता है कि समय रहते विद्यार्थी जीवन की इन आंतरिक चुनौतियों और समस्याओं का समाधान प्राप्त कर लिया जाए।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न होने वाले शोध-अनुसंधान कार्यों में विद्यार्थी जीवन का समग्र विकास, प्रबंधन और व्यक्तित्व के समस्याओं की रोक-थाम व समाधान जैसे महत्त्वपूर्ण और अत्यंत प्रासंगिक विषयों को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। इसी क्रम में विद्यार्थियों में तनाव व समायोजन के स्तर को लेकर सन् 2017 में एक विशिष्ट व महत्त्वपूर्ण शोधकार्य कुशलतापूर्वक संपन्न किया गया।

इस शोध अध्ययन में स्कूल जीवन से निकलकर कॉलेज जीवन में आने पर विद्यार्थी युवाओं में जो समस्याएँ व चुनौतियाँ सामने आती हैं, उनको केंद्र में रखकर इस वर्ग के युवाओं में तनाव व असमायोजन जैसी आंतरिक समस्याओं के समुचित समाधान के उपायों को खोजने का प्रयास किया गया। इस शोध अध्ययन को विश्वविद्यालय के नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत शोधार्थी आरती कैवर्त द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० प्रज्ञा राणा के निर्देशन में पूरा किया गया।

इस शोधकार्य का विषय था—**इफेक्ट ऑफ स्पिरिचुअल काउन्सिलिंग ऑन स्ट्रेस एंड एडजस्टमेंट लेवल ऑफ कॉलेज स्टूडेंट्स**। इस वैज्ञानिक एवं प्रयोगात्मक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के विभिन्न महाविद्यालयों से कोटा चयन विधि द्वारा 150 विद्यार्थियों का चयन किया, जिनकी उम्र 18 से 22 वर्ष के बीच थी। प्रयोग आरंभ करने से पूर्व सभी चयनित विद्यार्थियों का शोध उपकरणों के माध्यम से परीक्षण किया गया।

परीक्षण हेतु शोधार्थी ने जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया वे थे—श्रीमती रागिनी दुबे द्वारा निर्मित 'एडोलिसेंट एडजस्टमेंट स्केल एवं कोहेन, कमर्क व मर्मेल स्टेन (1983) द्वारा निर्मित परसिंड स्ट्रेस स्केल (PSS)' परीक्षण के उपरांत शोधार्थी द्वारा चयनित विद्यार्थियों के प्रयोगात्मक समूह को दो भागों में वर्गीकृत कर क्रमश: 20 दिन व 45 दिन तक आध्यात्मिक परामर्श चिकित्सा प्रदान की गई।

आध्यात्मिक परामर्श चिकित्सा के अंतर्गत जिन विशिष्ट विधियों को प्रयुक्त किया गया; वे थीं—दो मिनट शांत बने रहने का अभ्यास, 5 मिनट अमृतवाणी (परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीराम शर्मा जी के प्रेरक ऑडियो संदेश—चिंतन, मनन, शिक्षा और विद्या, अपने को बदलिए, सामाजिक क्रांति, विशेष समय, युग-परिवर्तन की वेला), पुन: 2 मिनट शांति का अभ्यास। इसके पश्चात 30 मिनट शोधार्थी द्वारा समूह परामर्श करना।

इस तरह लगभग 40 मिनट की अवधि तक प्रतिदिन परामर्श चिकित्सा प्रदान की जाती रही। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पुन: पूर्व की भाँति शोध उपकरणों के द्वारा सभी चयनित विद्यार्थियों का परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त तथ्यों एवं आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में यह पाया गया कि युवा विद्यार्थियों के तनाव व समायोजन स्तर पर आध्यात्मिक परामर्श चिकित्सा का सार्थक व सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

तनाव को उत्पन्न करने वाले कारणों में कमी व समायोजन स्तर को बढ़ाने वाली क्षमताओं का विकास—ये दोनों प्रभाव इस अध्ययन के निष्कर्ष को उपयोगी बनाते हैं। उल्लेखनीय है कि इस अध्ययन के परिणामों में जो सार्थक व उपयोगी पहलू निष्कर्ष रूप में प्राप्त हुए, उनके पीछे मुख्य कारण—शोधार्थी द्वारा अपनाई गई विशिष्ट आध्यात्मिक परामर्श चिकित्सा तकनीक रहा।

इस अध्ययन में अपनाई गई चिकित्सा विधि के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष थे, जिनके कारण यह और भी ज्यादा प्रभावी और विशिष्ट हो जाती है। पहला पक्ष है—अध्यात्म आधृत परामर्श और दूसरा—परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के दिव्य आध्यात्मिक और प्रेरक संदेश, जिनका उपयोग इस अध्ययन में शोधार्थी द्वारा विद्यार्थी की समस्या के अनुरूप अलग-अलग विषयों के माध्यम से किया गया है।

मनोवैज्ञानिक उपचार की तकनीकों में आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का समावेश करने से इस अध्ययन में आध्यात्मिक परामर्श के रूप में सर्वथा एक नई और प्रभावी चिकित्सा विधि सामने आती है। अध्यात्म हमारी संस्कृति का मूल आधार और जीवन को संपूर्णता प्रदान करने वाला अनुपम विज्ञान है। साथ ही इस विज्ञान का व्यक्ति की धार्मिक प्रवृत्तियों के साथ गहरा अंतर्संबंध है। यह न केवल मानसिक स्तर पर अपितु शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आत्मिक-व्यक्तित्व के सभी आयामों पर सार्थक प्रभाव डालता है।

विद्यार्थियों, युवाओं के लिए भी उनकी समस्याओं, चुनौतियों के समाधान व समग्र विकास के लिए अध्यात्म की तकनीक व आध्यात्मिक परामर्श एक सर्वोत्तम उपाय कहे जा सकते हैं। इस अध्ययन में प्रयुक्त 'अमृतवाणी संदेश' भी एक अध्यात्म विधि है, जिसके नियमित अभ्यास से व्यक्तित्व का रूपांतरण संभव हो सकता है। अमृतवाणी संदेश में व्यक्ति की समस्याओं के अनुरूप परमपूज्य गुरुदेव के आध्यात्मिक संदेशों का चयन किया जाता है।

इन संदेशों को सुनने से व्यक्ति के भीतर आत्मविश्वास, स्व-प्रेरणा, जीवन-दृष्टि, सकारात्मक चिंतन जैसी अनेकों व्यक्तित्व की उच्चस्तरीय क्षमताओं का विकास होता है फलस्वरूप व्यक्तित्व में पनपने वाली आंतरिक कमजोरी व परेशानियों का स्वत: समाधान हो जाता है। वर्तमान समय में विद्यार्थी जीवन की व्यवहार व व्यक्तित्व संबंधी समस्याओं के संदर्भ में परमपूज्य गुरुदेव का 'अमृतवाणी संदेश' एक सरल और अत्यंत प्रभावशाली उपाय है, जिसके अभ्यास से विद्यार्थी जीवन को सही, सार्थक और स्वस्थ जीवन का मार्ग प्रशस्त कराया जा सकता है।

इस अध्ययन में सम्मिलित किए गए संदेशों में—चिंतन, मनन, शिक्षा और विद्या, अपने को बदलिए आदि को कोई विद्यार्थी नियमित उपयुक्त रीति से सुनता है तो उसके व्यक्तित्व व व्यवहार में जो संभावित सकारात्मक परिवर्तन होंगे; वे हैं—'चिंतन' से मानसिक क्षमताओं जैसे—विचार शक्ति, कल्पना शक्ति, तर्क शक्ति, स्मृति, तर्क, निर्णय क्षमता आदि का विकास होगा। 'मनन' संदेश से व्यक्तित्व की स्थिरता, स्व-मूल्यांकन की क्षमता, स्वयं की कमियों को जानने, दूसरों व परिवेश के प्रति सही समझ व निर्णय जैसी अमूल्य क्षमताएँ विकसित होंगी।

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचन॥

—तैत्तिरीयोपनिषद् (2.4.1)

अर्थात जहाँ से वाणी, मन बिना पहुँचे लौट आते हैं, उस आनंदरूप ब्रह्म को जानता हुआ मनुष्य सब ओर से निर्भय हो जाता है।

'शिक्षा और विद्या' संदेश से विद्यार्थी जीवन की उपयोगिता, सार्थकता, जीवनलक्ष्य का निर्धारण, आदर्शों के प्रति प्रेरणा, संस्कारों-सत्प्रवृत्तियों को अपनाने की ललक जैसी क्षमताएँ जन्म लेंगी। इस तरह परमपूज्य गुरुदेव का संदेश 'अमृतवाणी' अपने आप में एक व्यापक और समग्र आध्यात्मिक और सूक्ष्म विज्ञान से परिपूर्ण है। इन्हें आध्यात्मिक चिकित्सा व परामर्श तकनीकों में उत्कृष्ट विधि के रूप में सम्मिलित कर परमपूज्य गुरुदेव के आध्यात्मिक विचारों के सामयिक महत्त्व और उपयोगिता को इस शोध अध्ययन में अत्यंत स्पष्टता और वैज्ञानिक विधि से प्रस्तुत किया गया। ❑

कहीं विलुप्त न हो जाए गौरैया

चिड़िया रानी के रूप में गौरैया पुरानी पीढ़ी के बचपन का एक अहम हिस्सा रही है। गाँवों में हर घर, खेत-खलिहान इसकी चीं-चीं की चहक से गुलजार रहते थे। वहीं कस्बों व शहरों में भी घरों तथा झुरमुट वाली झाड़ियों में यह उड़ती-फुदकती मिलती थी, लेकिन विकास के साथ जैसे-जैसे हम कृत्रिम जीवनशैली को अपनाते गए, इसके लिए जगह सिमटती गई।

अब शहरों में चिड़िया लुप्तप्राय: हो चली है तथा गाँवों में भी इसके दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं। विश्व भर में इसकी लगभग छब्बीस प्रजातियाँ पाई जाती हैं; जबकि भारत में इसकी पाँच प्रजातियाँ हैं। माना जाता है कि यह चिड़िया सबसे पहले मध्य-पूर्व में विकसित हुई। यहाँ से यह पूरे यूरोप और एशिया में गई। इसके बाद ऑस्ट्रेलिया और उत्तरी अमेरिका में यह आबाद हुई।

अंटार्कटिका के अतिरिक्त यह हर महाद्वीप में पाई जाती है। मुश्किल से 34 ग्राम की पहली चिड़िया लंबाई में 14 से 16 सेमी होती है। इसका रंग हलका भूरा तथा सफेद होता है। नर की पहचान उसके गले के पास काले धब्बे से होती है। इसका जीवनकाल 14 से 20 वर्ष होता है। यह विश्व के हर कोने में पाई जाती है। यह कृषकों की विशेष रूप से सहायक रहती है और पारिस्थितिकी तंत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। इसका आहार छोटे दाने, फसल की कोंपलों के अतिरिक्त खेत में फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़े-मकोड़े भी होते हैं।

प्राय: गौरैया को इनसान की बस्तियों के आस-पास देखा जाता है, फिर चाहे वह शहर हो या गाँव या जंगल। लोग जहाँ घर बनाते हैं, देर-सबेर गौरैया के जोड़े वहाँ रहने पहुँच ही जाते हैं। इस तरह यह मनुष्य के प्राचीनतम मित्र के रूप में मानी जाती है। इसे बबूल, कनेर, नीबू, अमरूद, अनार, मेहँदी, बाँस, चाँदनी जैसे पेड़ पसंद होते हैं, जिसमें यह आराम से अपने घोंसले बना लेती है और बड़े शिकारी पक्षियों से इसके घोंसले व बच्चों की रक्षा होती है।

आधुनिक कृषि में रसायन व कीटनाशकों के उपयोग से इसके लिए कीटों का आहार दुर्लभ हो चला है, ऐसे में यह खेतों व गाँवों से पलायन कर रही है। फिर नए घरों के बनाव भी ऐसे होते हैं, जिनमें छज्जे से लेकर खाली स्थान का अभाव रहता है। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई भी इसके आवास को उजाड़ रही है। ऐसे में चिड़िया के घोंसले के लिए जगह कम पड़ रही है। दूसरा शहरों में कबूतर जैसे बड़े पक्षियों को प्रश्रय देने से, जो कि चिड़िया के दुश्मन पक्षी हैं, चिड़िया के लिए उचित वातावरण नहीं मिल पाता। इसके साथ मोबाइल टावर की घातक तरंगों को भी यह नन्हा पक्षी नहीं झेल पाता।

ये तरंगें चिड़िया की दिशा खोजने की संवेदनशीलता को प्रभावित करती हैं और इनके प्रजनन पर भी बुरा प्रभाव डालती हैं। कंकरीट के बने घरों की दीवारों में घोंसले के लिए स्थान नहीं होता। घर-गाँव की गलियों का पक्का होना घातक रहता है, क्योंकि इनमें गौरैया को निर्बाध विचरण का प्राकृतिक परिवेश नहीं मिल पाता। ध्वनि प्रदूषण भी गौरैया की घटती जनसंख्या का एक बड़ा कारण है। गौरैया के विलुप्त होने का एक कारण बढ़ता तापमान भी है; क्योंकि यह पक्षी अधिक तापमान नहीं सह सकता।

प्रदूषण और विकिरण के कारण शहरों का तापमान बढ़ रहा है। इसकी घटती संख्या का एक कारण बहुमंजिली इमारतें भी हैं, जहाँ इन्हें पुराने घरों की तरह रहने के लिए जगह नहीं मिलती। आज की सुपरमार्केट संस्कृति के चलते पंसारी की दुकानें भी घट रही हैं, जहाँ इनको सहज रूप में दाना मिलता था। आश्चर्य नहीं कि पिछले दो दशकों में गौरैया की संख्या में काफी कमी आई है। पश्चिमी देशों में हुए अध्ययनों के अनुसार गौरैया की संख्या घटकर काफी खतरनाक स्तर तक कम हो गई है।

भारत के कई क्षेत्रों में तो इसकी आबादी में 60 से 80 प्रतिशत तक कमी आई है और यह ह्रास ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में हुआ है। कहीं तो यह बिलकुल ही नहीं दिखाई दे रही है। यदि इसके संरक्षण के प्रयास नहीं किए गए तो यह कहीं इतिहास का पक्षी न बन जाए और कहीं भावी पीढ़ी को इसके दर्शन पुस्तकों में ही नसीब न हों।

बीसवीं सदी के साठ के दशक में चिड़िया को फसल व किसानों का दुश्मन मानते हुए चीन में लाखों चिड़ियों का सामूहिक संहार किया गया था। जिसके बाद फिर देश में भयंकर अकाल की स्थिति आई, जिसे 'दि ग्रेट फेमिन ऑफ चाइना' कहा जाता है। पारिस्थितिकी संतुलन बुरी तरह से गड़बड़ा गया था। इसके संतुलन के लिए फिर रूस से लाखों चिड़ियों का आयात किया गया। इसके बाद हालात सुधरे और गौरैया का महत्त्व समझ आया, लेकिन व्यापक स्तर पर आज विश्व भर में गौरैया की स्थिति चिंताजनक बनी हुई है, जिसे विशेष संरक्षण की आवश्यकता है।

भारत की तरह यूरोप में भी गौरैया संरक्षण चिंता का विषय बन चुका है; जबकि ब्रिटेन में यह रेड लिस्ट में शामिल हो चुकी है। इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर ने सन् 2002 में इसे लुप्तप्राय प्रजातियों में शामिल कर दिया था। इसी क्रम में 20 मार्च, 2010 को विश्व गौरैया दिवस की घोषणा हुई, जो तब से हर वर्ष 20 मार्च को मनाया जाता है। कुछ प्रांतों में गौरैया को राज्य पक्षी घोषित किया गया। कई गैर-सरकारी संस्थान एवं जागरूक नागरिक इसके संरक्षण में लगे हुए हैं।

इन प्रयासों के चलते गौरैया की संख्या में कुछ सुधार अवश्य हुआ है, लेकिन इसके लिए और व्यापक स्तर पर प्रयास की आवश्यकता है, जिसमें हर व्यक्ति अपने स्तर पर योगदान दे सकता है। घर में इसके संरक्षण के उपाय किए जा सकते हैं। घरों की दीवारों में ईंटों के बीच घोंसले के लिए कुछ स्थान छोड़ा जा सकता है। इसके अतिरिक्त घरों में ऐसे स्थान उपलब्ध कराए जा सकते हैं, जहाँ यह आसानी से घोंसले बना सके तथा अपने अंडे एवं बच्चों को हमलावर पक्षियों से सुरक्षित रख सके। इनके घोंसले सुरक्षित स्थानों पर न होने के कारण कौए जैसे हमलावर पक्षी इनके अंडों तथा बच्चों को खा जाते हैं।

घर के आँगन, छत, खिड़कियों तथा छज्जों पर इनके लिए दाना और पानी रखा जा सकता है, विशेष रूप में गरमियों में इसकी अधिक आवश्यकता रहती है। बाजार से कृत्रिम घोंसले लाकर घर में भी टाँगे जा सकते हैं। मानवता के नाते किया गया यह छोटा-सा प्रयास जहाँ आंतरिक शांति-सुकून देगा, वहीं पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन के निमित्त एक महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा; क्योंकि इसकी घटती संख्या पर्यावरण में भारी गड़बड़ी का संकेत दे रही है, जिसका खामियाजा हम सबको देर-सबेर भुगतना ही होगा। समय रहते इस दिशा में उठाया गया एक छोटा-सा प्रयास सबके हित में एक सार्थक कदम होगा। ❑

एक राज्य का नियम था कि जनता राजा का चयन करती और उसे दस वर्ष तक शासन करने का अवसर देती। दस वर्ष के पश्चात राजा को एक निर्जन द्वीप पर छोड़ दिया जाता। संसाधनों के अभाव में राजा की मृत्यु हो जाती। अनेक व्यक्ति इसी प्रकार अपने प्राण गँवा चुके थे। एक बार एक बुद्धिमान व्यक्ति उस राज्य का राजा बना। राज्य सँभालते ही उसने राज्य के विकास की प्रक्रिया में द्रुतगति लाई। नई सड़कों का निर्माण करवाया और राज्य के उपेक्षित हिस्सों पर विशेष ध्यान दिया। उस क्रम में उस निर्जन द्वीप पर खेती प्रारंभ हो गई और दस वर्ष बीतते-बीतते वहाँ का स्वरूप ही बदल गया। द्वीप न केवल हरा-भरा हो गया, वरन वहाँ पर अच्छी-खासी आबादी भी हो गई। उसके लिए दस वर्ष बाद की नियत सजा वरदान सिद्ध हुई। जो व्यक्ति दूरदर्शिता से काम लेते हैं, उनके लिए कुसमय भी श्रेष्ठ अवसर जैसा सिद्ध होता है।

कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति का मार्ग

तीस वर्ष की आयु में गृहत्याग कर महावीर तपस्या करने के लिए निकल पड़े थे। बारह वर्षों की कठोर तप-साधना के बाद उन्हें कैवल्य ज्ञान अर्थात विशुद्धतम ज्ञान की प्राप्ति हुई। ज्ञानप्राप्ति के पश्चात भगवान महावीर जनकल्याण हेतु भ्रमण करते हुए लोगों को उपदेश देने लगे। वे लोगों को अज्ञान से मुक्ति व ज्ञान की प्राप्ति के साधन बताते।

वे लोगों को सुखमय जीवन के लिए सतत शुभ कर्म करने की प्रेरणा देते। वे कहा करते—''मनुष्य को कभी भी बुरे कर्म नहीं करना चाहिए; क्योंकि उनका फल हमेशा बुरा ही होता है। व्यक्ति को उसके किए गए कर्मों का फल एक दिन मिल कर ही रहता है।''

एक बार कर्म व कर्मफल के विषय में उपदेश देते हुए वे कह रहे थे—''इस जगत् में जितने भी प्राणी हैं, वे सब अपने-अपने संचित कर्मों के कारण ही संसार में चक्कर लगाया करते हैं। अपने किए गए कर्मों के अनुसार ही वे भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेते हैं। किए गए कर्मों का फल भोगे बिना प्राणी को छुटकारा नहीं मिलता।

''जिस तरह तुंबी पर मिट्टी की तहें जम जाने से वह भारी हो जाती है और डूबने लगती है, उसी प्रकार हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, मोह आदि कर्म करने से आत्मा पर कर्मरूप मिट्टी की तह जम जाती है और वह भारी बनकर अधोगति को प्राप्त हो जाती है, पर यदि तुंबी के ऊपर की मिट्टी की तहें हटा दी जाएँ तो वह हलकी होने के कारण पानी पर आ जाती है और तैरने लगती है। वैसे ही यह आत्मा भी जब कर्मबंधनों से सर्वथा मुक्त हो जाती है, तब ऊपर की गति प्राप्त करके लोकाग्र भाग पर पहुँच जाती है और वहाँ स्थिर हो जाती है।

''कर्मों के विविध प्रकार हैं। ज्ञानावरणीय कर्म वे कर्म हैं, जिनसे आत्मा के ज्ञान-गुण पर परदा पड़ जाता है; जैसे सूर्य का बादल से ढक जाना। दर्शनावरणीय कर्म वे कर्म हैं, जिनसे आत्मा की दर्शन-शक्ति पर परदा पड़ जाता है। वेदनीय कर्म वे कर्म हैं, जिनसे आत्मा को सुख-दु:ख का अनुभव होता रहता है। मोहनीय कर्म वे कर्म हैं, जिनसे आत्मा के श्रद्धा और अन्य गुणों पर परदा पड़ जाता है, जैसे कि शराब पीकर मनुष्य यह समझ नहीं पाता कि वह क्या कर रहा है?

''आयु कर्म वे कर्म हैं, जिनसे आत्मा को एक शरीर में नियत समय तक रहना पड़े; जैसे कोई कैदी जेल में रहता है। गोत्र कर्म वे कर्म हैं, जिनसे आत्मा को शुभ-अशुभ अवस्था की प्राप्ति होती है। वहीं अंतराय कर्म वे कर्म हैं, जिनसे आत्मा की लब्धि में विघ्न पड़ता है। आत्मा पर जब तक इन विभिन्न प्रकार के कर्मों के मलों का आवरण बना हुआ रहता है, तब तक व्यक्ति को कैवल्य ज्ञान अर्थात विशुद्धतम ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए सभी प्रकार के कर्मों का क्षय होने से ही कैवल्य ज्ञान का उदय होता है।''

भगवान महावीर के कहने का तात्पर्य यही है कि हम किसी भी प्रकार के कर्मबंधन में स्वयं को न बाँधें। हम अच्छे कर्म करें तथा बुरे कर्म करने से बचें। इसके साथ ही अच्छे कर्मों से प्राप्त होने वाले अच्छे फल के प्रति भी आसक्ति व मोह न रखें; क्योंकि अंतत: ये आसक्ति व मोह हमें बाँधने वाले ही हैं और हमारी मुक्ति व कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति में बाधक हैं।

इसलिए आसक्तिरहित, मोहरहित होकर कर्म करते हुए हम न सिर्फ वर्तमान जीवन को, बल्कि भावी जीवन को भी सुखद बना सकते हैं और कैवल्य ज्ञान को भी उपलब्ध हो सकते हैं और यदि इसके विपरीत हम बुरे कर्म करते रहें तो वे कर्म हमारे वर्तमान जीवन के साथ-साथ भावी जीवन को भी दु:खद व कष्टपूर्ण बना सकते हैं। इस संबंध में एक बहुत ही रोचक कथा आती है।

''राजा सिद्धार्थ की गजशाला में सैकड़ों हाथी थे। एक दिन चारे को लेकर दो हाथी आपस में भिड़ गए। उनमें से एक हाथी उन्मत्त होकर गजशाला से भाग निकला। उसके सामने जो भी वस्तु, व्यक्ति आए वह उन सभी को कुचलता, रौंदता हुआ भागता रहा।

''उस हाथी ने कई लोगों को लहूलुहान कर दिया। कई घरों को तहस-नहस कर डाला और चारों तरफ आतंक फैला दिया। राजा सिद्धार्थ के अनेक महावत और सैनिक मिलकर भी उस हाथी को वश में नहीं कर सके।

''यह समाचार वर्द्धमान महावीर को मिला। वे यह समाचार सुनते ही स्वयं उस उन्मत्त हाथी की खोज में चल पड़े। महावीर के साथ के लोग बड़े भयभीत हुए और महावीर को हाथी की ओर नहीं जाने को कहने लगे, पर महावीर ने उन सभी को निश्चिंत रहने का आश्वासन दिया और उस उन्मत्त हाथी की ओर चल पड़े। कुछ दूर जाने पर महावीर की नजर उस हाथी पर पड़ी।

''उन्होंने देखा कि वह सब कुछ तहस-नहस करने पर अमादा है। वह सब कुछ पैरों तले रौंदता जा रहा है। अपनी जान बचाने को लोग इधर-उधर बेतहाशा भागे जा रहे हैं। वह हाथी पेड़ की मजबूत टहनियों को तोड़कर लोगों के कच्चे मकानों पर फेंक रहा था, जिसके कारण कई घर धराशायी होते जा रहे थे।

''उसे देखकर लोग बड़े भयभीत और व्याकुल हो रहे थे। फिर वह अचानक चिंघाड़ता हुआ, भीषण वेग से महावीर की ओर ही दौड़ा मानो उन्हें कुचलकर रख देगा। दोनों का आमना-सामना हुआ, पर महावीर के पास पहुँचते ही वह उन्मत्त हाथी ऐसे रुक गया मानो किसी गाड़ी को आपात्कालीन रुकावट लगाकर रोक दिया गया हो।

''महावीर ने उसकी आँखों में झाँकते हुए मानो उसके भीतर कोई अदृश्य ऊर्जा संप्रेषित कर दी। वह हाथी उनके पास शांत होकर खड़ा रहा। महावीर उसकी आँखों में झाँकते हुए बड़े ही मधुर स्वर में बोले—'हे गजराज! शांत हो जाओ। अपने पूर्वजन्मों के फलस्वरूप ही तुम्हें पशुयोनि में जन्म लेना पड़ा। यदि इस जन्म में भी तुम हिंसा का त्याग नहीं करोगे तो अगले जन्म में भी तुम्हें भयंकर पीड़ा सहनी पड़ेगी। अभी समय है। अहिंसा का पालन कर तुम अपने भावी जीवन को सुखद बना सकते हो।'

''वर्द्धमान महावीर के उपदेश ने हाथी के अंतर्मन पर बहुत ही गहरा असर डाला। उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे। उसे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। उसने सूँड़ उठाकर महावीर का अभिवादन किया और शांत भाव से गजशाला की ओर लौट गया।'' इस कहानी की प्रबल प्रेरणा यही है कि वर्तमान जीवन में हम सुखद या दुःखद जिस किसी भी स्थिति में हैं, वह अतीत में अथवा पूर्वजन्मों में हमारे द्वारा किए गए कर्मों का ही परिणाम है।

यदि अभी हम सुखद स्थिति में हैं, आनंद की स्थिति में हैं तो यह हमारे ही अच्छे कर्मों का परिणाम है, शुभ कर्मों का परिणाम है, पुण्य कर्मों का परिणाम है और यदि वर्तमान में हम दुःख और कठिनाइयों से भरा हुआ जीवन जी रहे हैं तो यह भी हमारे ही कर्मों का परिणाम है और हमारा भावी जीवन, वर्तमान में हमारे द्वारा किए जा रहे अच्छे या बुरे कर्मों का ही परिणाम होगा। वर्तमान समय में यदि हम अच्छे कर्मों का, शुभ कर्मों का, पुण्य कर्मों का बीज बोएँगे तो भविष्य में अथवा अगले जन्म में हमें उन कर्मों का मधुर फल अवश्य प्राप्त होगा।

कुछ कर्मों का फल तो हमें तत्काल प्राप्त हो जाता है, पर कुछ कर्मों का फल हमें भविष्य में अथवा अगले जन्मों में प्राप्त होता है, पर प्राप्त होता अवश्य है, क्योंकि कर्मफल विधान बड़ा ही अकाट्य है, अटल है। अस्तु हम बुरे कर्म करने से बचें और सदा शुभ कर्म, पुण्य कर्म करते रहें। अच्छे कर्म करते रहें, पर उसके फल की चिंता न करें। कर्मफल के प्रति मोह, आसक्ति न रखें। कर्त्तापन का भाव न रखें। स्वयं को ईश्वर का एक उपकरण मात्र मानते हुए निष्काम कर्म करते रहें। यही निष्काम कर्म का पथ हमें कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति कराता है। ❑

ध्वंसः सरलं एवं च लघुरग्निकणोऽपि सः। ग्लपितं कीलकं चापि कर्तुं तत्प्रभवेदलम्॥
सृजनात्मककार्येषु गौरवं परिकीर्तिम्। चिन्तनं मानवस्याथ प्रयासः सर्जकेषु हि॥

—प्रज्ञा पुराण (4/78/79)

अर्थात ध्वंस सरल है। उसे छोटी चिनगारी एवं सड़ी कील भी कर सकती है। गौरव सृजनात्मक कार्यों में है। मनुष्य का चिंतन और प्रयास सृजनात्मक प्रयोजनों में ही निरत रहना चाहिए।

युगगीता —256

समस्त सृष्टि को अपना शत्रु मानते हैं आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य

(श्रीमद्भगवद्गीता के देवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की चौदहवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के तेरहवें श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले लोग ऐसा सोचा करते हैं कि इतनी वस्तुएँ तो मैंने आज प्राप्त कर ली हैं और अब इस मनोरथ को भी मैं पूर्ण कर ही लूँगा। वे सोचते हैं कि इतना धन तो अभी मेरे पास है ही, अब उतना धन भी हो ही जाएगा। गंभीर दृष्टि से देखें तो श्रीभगवान इन सारे वचनों के माध्यम से एक ही इशारा कर रहे हैं कि आसुरी व्यक्ति के बंधन का क्या कारण है और दैवी संपदा से युक्त व्यक्ति की मुक्ति किस आधार पर होती है। उनके अनुसार आसुरी स्वभाव वाले मनुष्यों के बंधन का कारण यह है कि वे एक निरर्थक दौड़ में अपने जीवन को उलझाकर बैठ जाते हैं और वह दौड़ है—संपत्ति के संग्रह, संचय की। यह वह दौड़ है, जो व्यक्ति को उलझाती ही जाती है, जिसके भी मन में ज्यादा-से-ज्यादा संपदा, संपत्ति को पाने का लोभ भर जाता है—उसे फिर अतुलनीय संपदा भी कम ही नजर आती है। लोभी को, लालची को, असंतोषी को—ज्यादा-से-ज्यादा धन भी कम ही लगता है; क्योंकि उसके मन में किसी भी कारण से संतोष नहीं आता। इसके विपरीत संतोषी व्यक्ति को सदा यह लगेगा कि जो भी मेरे पास है, वह भी ज्यादा ही है—यदि वह भी चला जाए तो कोई हर्ज नहीं। संतोषी सब कुछ खोकर के भी खुश रह सकता है और लोभी सब कुछ पा करके भी दुःखी होने का कारण ढूँढ़ लेगा।

आसुरी वृत्ति वाले लोग इसी तरह की दौड़ में उलझकर रह जाते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि वे सोचते हैं कि आज इतनी वस्तुएँ प्राप्त कर ही ली हैं, जो बचा हुआ मनोरथ है, जो शेष वस्तुओं को पाने की कामना है—वो भी शीघ्र पूरी हो ही जाएगी। उन्हें लगता है कि आज हमारे पास इतना धन है, कल उतना हो जाएगा। सच तो यह है कि वो कल, फिर कभी आता नहीं है। श्रीभगवान कहते हैं कि जो अपने को जितना चीजों से जोड़ेगा, उतने गहरे बंधन में गिरेगा और जो अपने को जितना ज्यादा इस प्रवृत्ति से तोड़ेगा, वह उतना ही मुक्त होगा।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी॥ 14॥

शब्द विग्रह—असौ, मया, हतः, शत्रुः, हनिष्ये, च, अपरान्, अपि, ईश्वरः, अहम्, अहम्, भोगी, सिद्धः, अहम्, बलवान्, सुखी।

शब्दार्थ—वह (**असौ**), शत्रु (**शत्रुः**), मेरे द्वारा (**मया**), मारा गया (**हतः**), और (उन) (**च**), दूसरे शत्रुओं को (**अपरान्**), भी (**अपि**), मैं (**अहम्**), मार डालूँगा (**हनिष्ये**), मैं (**अहम्**), ईश्वर हूँ (**ईश्वरः**), ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ। (**भोगी**), मैं (**अहम्**), सब सिद्धियों से युक्त हूँ(और) (**सिद्धः**), बलवान (तथा) (**बलवान्**), सुखी हूँ (**सुखी**)।

अर्थात आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य कहते हैं कि वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओं को भी हम मार डालेंगे। हम ईश्वर के समान सर्वसमर्थ हैं। हम भोगों को भोगने वाले हैं। हम सिंह हैं। हम बड़े बलवान और सुखी हैं। जिस व्यक्ति की वृत्ति आसुरी है, वो इसी प्रकार का चिंतन करने में समर्थ है।

इससे पूर्व के सूत्र में भगवान श्रीकृष्ण यह बता ही चुके हैं कि ऐसे स्वभाव वाले मनुष्य कामी व क्रोधी होते हैं, ईश्वर में व प्रकृति के कर्मफल विधान में उनका तनिक भी

विश्वास नहीं होता। स्वाभाविक है कि ऐसे व्यक्तियों में दो विश्वास बिना किसी विशेष प्रयत्न के पनप जाते हैं।

एक तो—वे स्वयं को ही ईश्वर समझने लग जाते हैं, जैसे हिरण्यकशिपु स्वयं को ही नारायण समझने लगा था और उसे भगवान विष्णु का नाम सुनते ही ईर्ष्या एवं द्वेष होता था। दूसरा—ऐसे व्यक्तियों के या तो शत्रु अनेक हो जाते हैं अथवा उन्हें हर व्यक्ति ही उनका शत्रु लगने लगता है; क्योंकि वे सभी उनकी कामनाओं के मध्य विरोधी की तरह से आकर खड़े हो जाते हैं। इसीलिए वे अहंकार से उन्मत्त होकर स्वयं को सर्वसमर्थ, सिद्ध, बलवान और सुखी समझते हैं; जबकि सत्य इससे विपरीत होता है।

सच पूछा जाए तो आसुरी वृत्ति के व्यक्ति की दो बातों में प्रमुख रूप से रस होता है। एक तो—उनको तुलना करने में आनंद आता है, जैसे हम दूसरों की तुलना में कितने पैसे वाले हैं; हमारा घर कितना बड़ा है; हमारी गाड़ी कितनी बड़ी है। इसीलिए उनको इस दौड़ में बड़ा रस मिलता है कि यदि आज उनके पास दस हजार हैं तो कल एक लाख हो जाएँ। लाख करोड़ में, करोड़ अरब में बदल जाएँ। उनको ये सारी संपदा कम लगती है; क्योंकि वे निरंतर अपनी संपदा की तुलना किसी अन्य से करते हुए जी रहे हैं, इसलिए जो भी उनको मिल जाए, वो कम ही रहने वाला है।

दूसरी—जो महत्त्वपूर्ण बात इस सूत्र में श्रीभगवान कहते हैं, वो यह कहते हैं कि वे अपने को सुखी समझते हैं अर्थात सुखी होते नहीं हैं, पर समझते हैं। ऐसा इसलिए कि वे तो अपना सुख कल जो मिलेगा उसमें समझे बैठे हैं। जो उन्हें आज मिला हुआ है, उसमें उनका विशेष रस नहीं है। उनको रस तो उसको पाने में है, जो आज उनके पास नहीं है अथवा किसी अन्य के पास है।

जब तक वे उसे पा न लें, तब तक वे आनंदित नहीं हो सकेंगे। इसीलिए वे निरंतर पाने की दौड़ में लगे रहते हैं और कभी भी सही, अर्थों में सुखी नहीं हो पाते। वे यह सोच करके ही जीवन जीते चले जाते हैं कि कल जब मेरे पास ये होएगा तब मैं आनंद उठाऊँगा। इसीलिए उनको सुख की प्रतीति होती है, पर उनको सुख मिलता नहीं है।

श्रीभगवान इसके साथ ही ऐसा कहते हैं कि ऐसी वृत्ति वाला मनुष्य सदा ही सोचता रहता है कि वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार ही डालूँगा। ऐसा इसलिए क्योंकि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य को दूसरों को नष्ट करने की बड़ी तीव्र लालसा होती है; क्योंकि उसे सभी अपने प्रतिस्पर्धी, सभी अपने दुश्मन नजर आते हैं।

इसीलिए दुर्योधन, अपने भाइयों को मारने निकल पड़ता है। रावण को विभीषण से ही बैर हो जाता है, चंगेज खाँ संतों को मारने चल पड़ता है, मुहम्मद गौरी को धर्मानुयायियों से शत्रुता नजर आती है और औरंगजेब अपने पिता को तो मरवाता ही है व साथ ही अपने भाई की चमड़ी उधेड़वाने में भी उसे कष्ट का एहसास नहीं होता; क्योंकि उसको अपना सुख दूसरों को पीड़ा देकर ही मिलता नजर आता है। इसके विपरीत दैवी संपदा वाला व्यक्ति दूसरों की प्रसन्नता के लिए स्वयं को कष्ट देने में भी संकोच नहीं करता।

यह ही कारण है कि यदि हम परमपूज्य गुरुदेव जैसे व्यक्तियों के पास बैठें, उनके पास बैठें जिनके जीवन में दैवी संपदा विद्यमान है तो ऐसा लगता है कि मानो एक नवजीवन मिल गया हो। मन का विषाद उनके पास पहुँचकर समाप्त हो जाया करता था और हर व्यक्ति के मन में अंदर से उत्साह, विचारों में पवित्रता का संचार हुआ करता था।

छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी उनके पास पहुँचकर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता था; क्योंकि महामानव दूसरों को मिटाने में नहीं, उनको ऊपर उठाने में विश्वास रखते हैं। इसके विपरीत आसुरी प्रवृत्ति के लोग दूसरों को शत्रु समान समझकर उनको मारने में, मिटाने में विश्वास रखते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि इसी कारण वे कहते हैं कि वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और अब दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा।

ऐसा व्यक्ति फिर स्वयं को ऐश्वर्यवान, ऐश्वर्यों को, भोगों को भोगने वाला तथा सब सिद्धियों से युक्त, बलवान तथा सुखी मानता है। इन सब वचनों में सार ये ही है कि ऐसा वह मानता है, होता नहीं है। दैवी संपदा वाला व्यक्ति होता है, पर मानता नहीं है।

जिसमें अहंकार मुख्य तत्त्व हो—उसका सारा जोर स्वयं को मानने पर लगता है और जिसने निरहंकारिता को अपना मूलमंत्र बना लिया हो, वो बनने पर शक्ति लगाता है। मानने वाला आसुरी वृत्ति का व्यक्ति है और बनने वाला दैवी संपदा से युक्त। (क्रमशः)

क्रांतिकारी महर्षि अरविंद

महर्षि अरविंद स्वतंत्रता संग्राम दौर के महान क्रांतिकारी योगी हुए, जो स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, मनीषी, पत्रकार, राजनेता, साहित्यकार, शिक्षक, ऋषि जैसी विविध भूमिका में अपनी अमिट छाप छोड़ते गए। श्रीअरविंद के प्रारंभिक वर्ष अपने भाई के संग इंग्लैंड में बीते, जहाँ से उन्होंने अपनी पढ़ाई पूरी की। वहीं से वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से बौद्धिक रूप से जुड़े।

भारत आने पर उन्होंने भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं धर्म-दर्शन का गहन पारायण किया और यहाँ की सांस्कृतिक-आध्यात्मिक विरासत को आत्मसात् किया। उनके प्रारंभ के वर्ष वड़ोदरा के महाराजा के यहाँ शिक्षक से लेकर सचिव की भूमिका में बीते और फिर वे पूरी तरह से स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े और कोलकाता में प्रेसिडेंसी कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में अपनी सेवा देते रहे।

इसी दौर में वंदे मातरम् एवं कर्मयोगिन जैसे पत्रों के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम में वे नवीन प्राण फूँकते रहे। अल्पकाल में ही भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर जाज्वल्यमान नक्षत्र की भाँति प्रकट हुए और स्वतंत्रता संघर्ष को धार एवं दिशा देकर ईश्वरीय आदेश पर पांडिचेरी में आध्यात्मिक साधना एवं साहित्य सृजन में रम गए। श्रीअरविंद की शादी भी हुई थी, लेकिन स्वतंत्रता संग्राम के साथ अपने यौगिक एवं सृजनात्मक जीवन में निमग्न होने के कारण यह एक पारिवारिक औपचारिकता मात्र तक सीमित रही। अपनी मन:स्थिति का वर्णन करते हुए श्रीअरविंद ने अपनी पत्नी मृणालिनी को लिखे पत्र में कहा कि मेरे अंदर तीन पागलपन हैं।

पहला—मेरा अटल विश्वास है कि ईश्वर ने मुझे जो गुण, प्रतिभा, उच्च शिक्षा, ज्ञान और धन दिया है, वह सब उसी का है। मुझे उतना ही खरच करने का अधिकार है, जितना मेरे परिवार के भरण-पोषण और अन्य अत्यावश्यक कार्यों के लिए आवश्यक है। अपने निर्वाह के अतिरिक्त जो बच जाए, उसे ईश्वर को लौटा देना चाहिए। मैं मानता हूँ कि सारी संपत्ति प्रभु की है और उसे प्रभु के कार्य में लगाना चाहिए।

अपने दूसरे पागलपन का उल्लेख करते हुए श्रीअरविंद ने लिखा—यदि ईश्वर है तो उसके अस्तित्व का अनुभव करने का, उसका साक्षात् दर्शन करने का कोई पथ अवश्य होगा। यह पथ कितना भी कठोर हो, मैं उस पर चलने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हूँ। जैसे भी हो मैं ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहता हूँ।

पत्र में श्रीअरविंद ने तीसरे पागलपन का उल्लेख करते हुए कहा—जहाँ दूसरे लोग देश को एक जड़ वस्तु कुछ मैदान, जंगल, पहाड़ और नदी मात्र समझते हैं, वहीं मैं अपने देश को अपनी माता मानता हूँ। मैं उसकी पूजा करता हूँ और माँ की तरह उसकी भक्ति करता हूँ।

यदि हम अनीति से बचे रहें तो किसी के भी शाप से डरने की जरूरत नहीं है, किंतु यदि हम स्वयं अन्याय करते हैं या अनीति में सहयोग देते हैं तो उसका दंड प्रकृति-व्यवस्था के अनुसार तो निश्चित ही है।

—परमपूज्य गुरुदेव

मेरे पास जो कुछ भी है, वह भारतमाता का ही है। अपने प्रबल देशप्रेम को उजागर करते हुए श्रीअरविंद ने लिखा—जब कोई राक्षस माँ की छाती पर बैठकर उसका खून चूस रहा हो तो उसका पुत्र उस समय क्या करेगा? क्या वह चुपचाप अपने खान-पान में लगा रहेगा तथा पत्नी-बच्चों के साथ मौज मनाता रहेगा या इसके बदले माँ को बचाने के लिए दौड़ पड़ेगा।

इसी पृष्ठभूमि में श्रीअरविंद राजनीति से लेकर आध्यात्मिक क्षेत्र में अपनी क्रांतिकारी भूमिका में सक्रिय रहे और सन् 1947 में उनके जन्मदिन 15 अगस्त को देश स्वतंत्र हुआ, जिसे उन्होंने अपनी नियति से जुड़े ईश्वरीय विधान के रूप में देखा। ❑

खाद्य पदार्थों में घुलता जहर

आजकल खान-पान को लेकर आम आदमी का रुझान शाकाहार की ओर बढ़ता जा रहा है। स्वास्थ्य के प्रति सजग व्यक्ति दूध, फल व हरी सब्जियों की ओर आकर्षित हो रहा है। बाजार में भी एक से बढ़कर एक आकर्षक व लुभावने फल व सब्जियाँ बिकते दिखाई दे रहे हैं। इतने सुंदर, आकर्षक तथा सुडौल फल व सब्जियाँ बाजार में पहले दिखाई नहीं देते थे।

इसी प्रकार देश में हम कहीं भी जब और जितना चाहें दूध, दही, पनीर, देसी घी तथा खोया आदि खरीद सकते हैं। यह सभी खाद्य सामग्रियाँ सरेआम बाजार में दुकानों व रेहड़ियों पर तथा डेयरी में हर समय उपलब्ध हैं। किसी भी शादी-विवाह अथवा दूसरे बड़े-से-बड़े आयोजनों में यदि आप चाहें तो कहीं भी गाँव, कस्बे या शहर में टनों के हिसाब से हमको प्रत्येक वस्तु हासिल हो सकती है।

होना तो यह चाहिए था कि जिस प्रकार की हरी व सुंदर सब्जियाँ व आकर्षक फल व दूध, घी व खोया बाजार में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं और हमारा समाज इन खाद्य सामग्रियों का एक नियमित उपभोक्ता भी है, ऐसे में देश के लोगों को हृष्ट-पुष्ट व पूरी तरह से स्वस्थ व निरोगी होना चाहिए था, परंतु वास्तविकता तो यही है कि इतने आकर्षक खान-पान के बाद भी आम लोगों में नई-नई बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं।

छोटे व कम उम्र के बच्चों को ऐसे-ऐसे रोग हो रहे हैं, जो अल्पायु में होते हुए सुने ही नहीं गए। आँखों की रोशनी से लेकर हृदय रोग व कैंसर तथा पोलिया जैसी बीमारियाँ कम उम्र के लोगों को होने लगी हैं। तरह-तरह के चर्म रोग होते देखे जा रहे हैं। आखिर क्या वजह है कि हमारा समाज अच्छे खान-पान के बावजूद ऐसी बीमारियों का शिकार हो रहा है और शाकाहार से सेहतमंद होने के बजाय वह बीमारियों को क्यों गले लगा रहा है?

दरअसल इसके पीछे व्यावसायिकता की वह मानसिकता जिम्मेदार है, जो कम समय में अधिक पैसे कमाना चाहती है तथा रातोरात धनवान बनने के फिराक में लगी रहती है और इसी के साथ-साथ ऐसी खतरनाक व्यावसायिक मानसिकता रखने वाले लोगों को उन सरकारी विभागों का संरक्षण हासिल रहता है, जिनका काम ऐसे खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता पर लगातार निगरानी बनाए रखना है।

भ्रष्टाचार व रिश्वतखोरी ने जब जहरीले खाद्य पदार्थों की बिक्री पर नजर रखने वाले विभाग की आँखों पर ही पट्टी बाँध दी है, ऐसे में भला इन जहरीले खाद्य पदार्थों के बढ़ते साम्राज्य को रोक ही कौन सकता है? इस पूरे प्रकरण में एक सबसे आश्चर्यजनक बात यह भी है कि यदि कोई सब्जी व्यापारी ऐसी सब्जियाँ बेचता है, जिन्हें प्रतिबंधित ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन के बल पर सुंदर, गाढ़ा हरा व सुडौल बनाया गया है तो वही सब्जी व्यापारी अपने घर में इस्तेमाल करने के लिए जो फल या दूध खरीदकर ले जाता है, उसमें भी उसे मिलावट या इंजेक्शन का प्रयोग जरूर मिलता है।

हद तो यह है कि जो रिश्वतखोर, भ्रष्ट सरकारी कर्मचारी पैसा कमाने के चक्कर में इस प्रकार की धड़ल्ले से बिकने वाली जहरीली खाद्य सामग्रियों की बिक्री से अपनी नजरें फेरे रहते हैं, वे सरकारी कर्मचारी भी अपने घर-परिवार के लिए यही फल व सब्जियाँ तथा दूध आदि ले जाने के लिए बाध्य हैं और रिश्वत के लोभ में अंधे यह लोग इतना भी नहीं सोच पाते कि वे चंद पैसों के लालच में न केवल दूसरे, बल्कि अपने परिवार के लिए भी जहर तथा बीमारियाँ खरीदकर ले जा रहे हैं।

ऑक्सीटोसिन का अधिकृत उपयोग प्रसव के दौरान गर्भवती महिलाओं पर किया जाता है, परंतु आज देश में इसका बड़े पैमाने पर गैरकानूनी इस्तेमाल किया जा रहा है। गाय-भैंसों से अधिक दूध प्राप्त करने के लालच में इसके इंजेक्शन इन जानवरों को लगा दिए जाते हैं। इससे जानवर न केवल अधिक, बल्कि जल्दी-से-जल्दी दूध देने लगते हैं। इसी प्रकार फलों व सब्जियों को पकाने व इन्हें आकार में बड़ा व सुडौल करने के लिए भी ऑक्सीटोसिन इस्तेमाल किया जाता है। यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि अब ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन भी असली के बजाय नकली तैयार

होने लगा है यानी जहर भी असली नहीं, बल्कि नकली तैयार हो रहा है।

अब यह नकली इंजेक्शन कितना घातक व हानिकारक होगा, इसका अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है। देश के कई इलाकों में ऑक्सीटोसिन बनाने व इसको पैकिंग करने का कुचक्र चल रहा है। गौरतलब है कि सरकार ने ऑक्सीटोसिन इंजेक्शन की बिक्री प्रतिबंधित कर रखी है। इसीलिए इसे बेचना अनधिकृत है और यह एक बड़ा अपराध है। इसकी बिक्री करने वाले को दो वर्ष से लेकर उम्रकैद तक की सजा भी हो सकती है, परंतु इतने कठोर, कानूनी प्रावधानों के बावजूद इस तरह की सामग्रियाँ सड़कों पर, बाजारों में व गली-कूचों में सरेआम बिक रही हैं।

क्या आम आदमी, क्या गरीब, क्या अमीर, क्या कर्मचारी तो क्या अधिकारी, क्या नेता तो क्या अभिनेता, क्या नीति-निर्माता तो क्या कानून का रखवाला—सभी इन्हीं खाद्य पदार्थों पर लगभग आश्रित हो चुके हैं। हद तो यह है कि यदि आप किसी फल या सब्जी विक्रेता से या दूध, घी, पनीर आदि बेचने वाले से उसके द्वारा बेचे जा रहे किसी सामान की गुणवत्ता या उसकी वास्तविकता पर कोई संदेह जताना चाहें या उससे इस प्रकार के कोई सवाल-जवाब करना चाहें तो वह दुकानदार प्रतिवाद करने को भी तैयार हो जाता है।

कई दुकानदार यह कहकर बहस में पड़ने से कतराते हैं कि जो सामान मंडी में बिकने को आता है, हम वही लाकर बेचते हैं। प्रत्येक साधारण व्यक्ति इस बात को भली भाँति स्वीकार कर रहा है कि आजकल बाजार में बिकने वाले इस प्रकार के खाद्य पदार्थ भले ही पहले से अधिक सुंदर व लुभावने क्यों न दिखाई देते हों, परंतु न तो उनमें कोई स्वाद बाकी है, न ही कोई खुशबू बची है। इन चीजों के खाने-पीने में भी कोई कशिश या आकर्षण नहीं रह गया है।

जाहिर है ऐसे में ये चीजें फायदा पहुँचाने के बजाय नुकसान ही पहुँचाएँगी और पहुँचा रही हैं। सवाल यह है कि जब शासन निरंकुश हो, सरकारी विभाग, दुकानदारों, मिलावटखोरों तथा नकली वस्तुओं के उत्पादकों के बीच एक बड़ा व खतरनाक कुचक्र का जाल बन जाए तो ऐसे में आम लोगों को इस मुसीबत से निजात कैसे मिले? इसका सबसे आसान उपाय यही है कि संदेह होने पर ऐसे दुकानदारों का बहिष्कार किया जाए और यदि हो सके तो संगठित रूप से इसका विरोध किया जाए।

जहाँ तक हो सके स्वयं को ऐसी सामग्रियों के सेवन से दूर रखा जाए। यदि हमारे घर में कच्ची जमीन उपलब्ध है या गमले आदि की व्यवस्था हो सकती है तो घरों में ही अधिक-से-अधिक सब्जियाँ व फल लगाने व उगाने की व्यवस्था करें। सहकारिता के आधार पर गली-मुहल्ले के कुछ लोग मिलकर खाली पड़ी जमीन पर यही काम सामूहिक रूप से भी कर सकते हैं। मिलावटखोरों या मिलावटी व जहरीले सामान बेचने वालों के विरुद्ध निरंतर उच्चाधिकारियों से शिकायतें की जाएँ।

बार-बार समाचारपत्रों में ऐसे व्यवसायियों के नाम व उनके चित्र आदि प्रकाशित कर उनकी जनहानि पहुँचाने वाली हरकतों से लोगों को आगाह कराया जाए। अन्यथा हम बेवजह स्वास्थ्य संवर्द्धन का ढोल पीटते रहेंगे और हमारे सामने इसी प्रकार जहरीले खाद्य पदार्थों का व्यापार धड़ल्ले से होता रहेगा। ❑

माता मदालसा आरंभ से ही अपने बच्चों में शुभ भावनाएँ भरते हुए कहती थीं—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसारमाया परिवर्जितोऽसि।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां, मन्दालसावाक्यमुवाच पुत्रम्॥

अर्थात हे पुत्र! तू शुद्धस्वरूप है, तू ज्ञानस्वरूप है, तू निरंजन है, विकाररहित है। संसार माया से रहित है। मोहनिद्रा का त्याग कर, संसार स्वप्न को छोड़। बचपन से ही उनके द्वारा प्रदत्त इस आत्मसाक्षात्कारपरक संदेश का यह सुपरिणाम था कि उनके चार में से तीन पुत्र ब्रह्मज्ञानी बने और चौथे ने वंशक्रम को चलाने मात्र के लिए गृहस्थ धर्म का चयन किया।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी – 2

वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता

(उत्तरार्द्ध)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने इस विशिष्ट साधनात्मक उद्बोधन में सभी साधकों को माँ गायत्री की विलक्षण विशेषताओं से परिचित कराते हैं। वे कहते हैं कि हम मनुष्य के रूप में जन्म लेते हैं, वैसे ही हमारे जीवन में दो माताओं का आगमन होता है। एक माँ तो हमारी वो हैं, जो हमें शरीर प्रदान करती हैं और शरीर को पोषण प्रदान करती हैं। दूसरी माँ वो हैं, जिनके माध्यम से आत्मा को प्राणरूपी पोषण प्राप्त होता है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि यदि शरीर पुष्ट होता है तो व्यक्ति बलवान बनता है, परंतु आत्मा के पुष्ट होने पर मनुष्य देवता बनता है। मनुष्य में देवत्व का उदय सुनिश्चित करने वाली माँ, गायत्री माँ हैं और गायत्री मंत्र ही सार्वभौम, सर्वजनीन मंत्र है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

भारतीय संस्कृति की जननी गायत्री माता

मित्रो! मेरे कहने का उद्देश्य यह था कि हमारी वह माँ, जिसका हमने दूध पीना छोड़ दिया। दूध हमको नहीं मिल सका। दूध से हम अलग हो गए। हमारी माँ हमसे अलग कर दी गई और हम अपनी माँ से अलग हो गए। माँ से अलग होने के बाद में कितना नुकसान उठाया? हमने बहुत नुकसान उठाया। पिछले दिनों में न जाने कौन आया, जिसने हम माँ-बेटे को अलग कर दिया। माँ अलग इधर रह गई। खूँटे से बाँध दी गई और बच्चा रँभाता रहा, पुकार करता रहा और उसके गले में भी रस्सी बाँध दी गई। दोनों को अलग-अलग रस्सी से बाँध दिया गया और एक समय ऐसा भी आ गया जब माँ के थन सूख गए और बच्चे को बिना दूध के रहना पड़ा। ऐसा एक वक्त आ गया। कैसे हुआ? हमारे पड़ोसियों ने हमसे कहा—"गायत्री माता, जिसको आप कामधेनु भी कह सकते हैं, जो हमारी भारतीय संस्कृति की जननी है। जिसको आप बीजाक्षर कह सकते हैं। यह वह बीज है, जिससे दरख्त पैदा होता है। भारतीय धर्म-संस्कृति जिस बीज से पैदा होती है, उसका नाम गायत्री मंत्र है।"

साथियो! उसकी बाबत हमारे मित्रों ने कहा—इसको तीन बार नहीं जप सकते, उपासना नहीं कर सकते। एक कौन जप सकता है? इसका मतलब है कि तीन-चौथाई आदमी उससे ताल्लुक नहीं रख सकते। उस पर एक-चौथाई आदमियों का ही अधिकार है। सूरज पर सबका अधिकार है। हवा पर सबका अधिकार है। बादलों पर सबका अधिकार है। जमीन पर सबका अधिकार है। जब भगवान की बनाई चीजों पर सबका अधिकार है, तो फिर गायत्री पर क्यों नहीं?

फिर माँ को अलग करने वाले लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया कि गायत्री सिर्फ ब्राह्मणों की है। फिर एक और आया। उसने एक और बात कह दी कि गायत्री की सिर्फ मर्द उपासना कर सकते हैं, औरतें नहीं कर सकतीं। एक उन चार में से फिर आधा हिस्सा और कट गया। एक बटे आठ की माँ बता दी गईं और अब आठ बच्चों में से सात बच्चे माँ का दूध नहीं पी सकते। केवल एक बच्चा पी सकता है—मर्द ब्राह्मण। औरत ब्राह्मण? औरत ब्राह्मण नहीं पी सकती।

गायत्री के विषय में मूढ़मान्यताएँ

मित्रो! फिर एक और ने कह दिया कि कलियुग में गायत्री को शाप लग गया है। फिर एक और ने कह दिया कि ब्रह्मा जी ने शाप दे दिया और वसिष्ठ जी ने शाप दे दिया। क्यों? ब्रह्मा जी ने तो हजार वर्ष तप करके गायत्री के चार चरणों की चार व्याख्याएँ की थीं और चारों वेद बनाए थे। उन्होंने क्यों शाप दे दिया? गायत्री से लड़ाई हो गई थी? नहीं साहब! लड़ाई-भिड़ाई तो नहीं हो गई थी, पर हमारा ख्याल है कि ब्रह्मा जी ने जरूर शाप दे दिया होगा।

दूसरे ने कहा कि विश्वामित्र जी ने शाप दे दिया है। विश्वामित्र कौन हैं? विश्वामित्र वे हैं, जिन्होंने गायत्री के ऊपर पी-एच०डी० की है, डी०लिट्० की है। वे एक ऋषि हैं। प्रत्येक वेद मंत्र का एक ऋषि होता है। गायत्री मंत्र का एक ऋषि है, जिसका नाम विश्वामित्र है। विश्वामित्र ने शाप दे दिया है—लोगों ने मान लिया कि शायद ऐसा ही हुआ होगा। माँ को अलग कर दिया और बच्चों को अलग कर दिया गया। किसी और ने एक और बात कही कि इसको कान में कह सकते हैं। खुले में जोर से नहीं कह सकते।

मित्रो! मैं आपसे यह पूछता हूँ कि कान में क्या बातें कही जाती हैं। कान में चोरी की बातें कही जाती हैं, चालाकी की बातें कही जाती हैं। खुराफात की बातें कही जाती हैं, बेईमानी की बातें कही जाती हैं। बदमाशी की बातें कही जाती हैं। हम अच्छी बातें कह रहे हैं तो खुलेआम कहें। अगर हमको आपसे कोई खुराफात की बात कहनी होगी, चोरी, चालाकी की बात कहनी होगी, तो इशारे से बुलाएँगे और कान में कहेंगे और यह भी कह देंगे कि किसी से कहना मत। गायत्री की बाबत भी ऐसे ही बताया गया। हम क्या कह सकते हैं।

मित्रो! अंधकार युग में माँ और बच्चे को अलग कर दिया गया। गायत्री, जो हमारी भारतीय संस्कृति की जननी थी, उसके बारे में हम आपको क्या बताएँ? गायत्री हिंदू धर्म का मूल है। मुसलिम धर्म का एक सूत्र है, उसका नाम है—कलमा और हिंदू का एक सूत्र है, जिसका नाम है—गायत्री। गायत्री के चार चरणों की व्याख्याएँ वेदों में हुई हैं। वेदों में ही नहीं, पुराणों में भी हुई हैं। लोगों को समझने में दिक्कत पड़ी।

उन्होंने कहा—साहब! हमको बात समझाइए, कुछ समझ नहीं आता है। यह फिलॉसफी समझ में नहीं आती है। यह ज्ञान समझ में नहीं आता। तब ऋषियों ने कहा कि हम आपको सरल तरीके से समझा देते हैं। उन्होंने गायत्री के 24 अक्षरों को 24 भगवान बताया, 24 अवतार बताया और हर अवतार के ऊपर एक पुराण लिखा। हर अवतार के कथानक बनाए, हर अवतार की व्याख्या की, हर अवतार के क्रियाकलाप के साथ में एक फिलॉसफी बनाई। जीवन की एक दृष्टि बनाई, गतिविधि बनाई। समस्याओं के समाधान बनाए और एक-एक भगवान के 24 अवतारों को बनाया।

मित्रो! 24 अवतार ही क्यों, 25 क्यों नहीं बनाए? 26 क्यों नहीं? 28 क्यों नहीं? 54 क्यों नहीं, 9 क्यों नहीं? तो क्या 24 ही हो सकते हैं? गायत्री मंत्र के 24 अक्षर हैं। इसीलिए एक अक्षर को एक भगवान बताया गया। महर्षि दत्तात्रेय, जिनको भगवान दत्तात्रेय कह सकते हैं, उनको ज्ञान की बड़ी प्यास थी। इतनी कि उनकी ज्ञान-पिपासा का समाधान ही नहीं होता था। आत्मज्ञान नहीं प्राप्त होता था। वे ब्रह्मा जी के पास गए और ब्रह्मा जी से पूछा कि हमको ज्ञान का कोई तरीका बताइए।

उन्होंने कहा—आपको 24 गुरु बनाने पड़ेंगे और 24 गुरु आपको जो ज्ञान देंगे, वही समग्र ज्ञान हो जाएगा। भगवान दत्तात्रेय ने 24 गुरु बनाए हैं। आप उनकी 24 गुरुओं की कथा पढ़िए। 24 गुरुओं से दीक्षा लेने के बाद में दत्तात्रेय जी ज्ञान में पारंगत हो गए और वे भगवान हो गए। जीवनमुक्त हो गए। जो कुछ भी होना था, सो हो गए। क्यों साहब! 24 गुरु ही क्यों? 28 क्यों नहीं, 11 क्यों नहीं, 29 क्यों नहीं, 56 क्यों नहीं? 24 ही क्यों? 24 इसलिए कि गायत्री के 24 अक्षर जो हैं, यही गुरु हैं, जिनमें से प्रत्येक अक्षर के अंदर एक समग्र चीज बनी है।

गायत्री के भीतर है सारा ज्ञान

मित्रो! एक बीज के अंदर एक दरख्त का सारे-का-सारा ढाँचा भरा पड़ा है। दरख्त कैसा होगा, पत्ते कैसे होंगे, फूल कैसे होंगे, फल कैसे होंगे, ये सारी-की-सारी चीजें बीज रूप में छोटे से बीज में छिपी हुई हैं। इसी तरह शुक्राणु के अंदर बाप की नाक कैसी है, बाबा की आँखें कैसी थीं, दादी को दमे की शिकायत थी, वह कैसी है—सारे-के-सारे खानदान की हिस्ट्री छोटे से शुक्राणु में कैद रहती है और छोटा-सा गायत्री मंत्र, जिसकी हम उपासना करते हैं और आपसे उपासना करने के लिए प्रार्थना करने आए हैं।

आप ग्वालियर वालों ने शक्तिपीठ की स्थापना की, हम जिसका उद्घाटन करने के लिए आए हैं। बीज के अंदर जो विशेषताएँ दबी पड़ी हैं, जो दैवी संपदा कहला सकती है। जो हमारे भारतवर्ष की थाती है। जो ऋषियों की अमानत है और भारत की गरिमा की आधारशिला है। यह छोटा-सा गायत्री मंत्र, छोटे से 24 अक्षरों का गुच्छक—यह बड़ा शानदार है। ऋषियों ने यह समझा कि हमारे बेटों को, हमारी औलाद को इसको छाती से चिपका करके रखना चाहिए। इसे गँवा देंगे तो मारे जाएँगे। इसे गँवा देंगे तो कुछ रहेगा नहीं।

मित्रो! मैंने सुना है कि किन्हीं खास साँपों के अंदर मणि होती है और जब तक मणि होती है, तब तक रात को चमकते हैं। वे बड़े जहरीले होते हैं और बड़े फुरतीले होते हैं। जब कोई मणि को निकाल लेता है तो बिलकुल बेकार हो जाते हैं। बैठे रहते हैं और मौत के मुँह में चले जाते हैं। देखा तो नहीं, पर मैंने सुना है। अगर यह बात सही है तो आप यह भी कह सकते हैं। अपनी सभ्यता और संस्कृति ऐसी थी कि जिसके नागरिकों को न जाने क्या-से-क्या पदवी मिली थी। जिसके नागरिक महामानव कहलाते थे। महापुरुष कहलाते थे, ऋषि कहलाते थे, देवात्मा कहलाते थे और अवतारी कहलाते थे। उस सभ्यता को न जाने कौन ले गया।

इस 24 अक्षर वाली गायत्री के अंदर एक फिलॉसफी है। अगर आप उस फिलॉसफी को समझ सकें तो एक मानवीय फिलॉसफी, देवताओं की फिलॉसफी और सारे विश्व को समुन्नत बनाने की, स्वर्ग का अवतरण कराने वाली फिलॉसफी आप कह सकते हैं, जो प्राचीनकाल में काम में लाई गई थी और अब इसको काम में लाया जाएगा। ऐसा है यह गायत्री का विज्ञान। यह हिंदुओं की है? अरे! हिंदुओं की ही नहीं। यह तो सारे विश्व की है।

मित्रो! एक बार जामिया मिलिया का उद्घाटन करने के लिए महात्मा गांधी जी दिल्ली गए। सारे मौलवी और दूसरे मुसलमान बैठे हुए थे। आधा घंटे बोलने के लिए उनका समय नियत था। गांधी जी ने गायत्री मंत्र की व्याख्या की। जब भाषण खतम हो गया तो मुसलमान नाराज होने लगे। हकीम अजमल खाँ भी वहाँ थे। वे भी जामिया मिलिया में काम करते थे। उन्होंने कहा कि आपने मुसलमानों के सामने गायत्री मंत्र क्यों कहा? आप कुछ और भी कह सकते थे।

उन्होंने कहा—"आप गायत्री मंत्र को हिंदुओं का क्यों कहते हैं? यह तो सारे विश्व का है। सार्वभौम है, सर्वजनीन है। यह मानवीय सभ्यता से संबंध रखता है। संस्कृत भाषा में लिखी गई यह ऋचा आप हिंदुओं की बताते हैं। अँगरेजी में लिखी गई कोई बात—इसका अर्थ है कि वह अँगरेजों की बपौती हो गई। कोई बात ग्रीक में, रोमन में लिखी गई है, फ्रेंच में लिखी गई है या किसी और भाषा में लिखी गई है तो क्या वह उसी देश की बपौती हो गई। क्या कहना चाहते हैं?" सारे मुसलमानों ने माना।

मित्रो! वह लेख अपनी अखण्ड ज्योति में भी छपा। जामिया मिलिया में दिया गया उनका भाषण, जिसमें उन्होंने गायत्री मंत्र को विश्वमानव की धरोहर बताया है। क्यों साहब! ऐसे कैसे कहा? गायत्री मंत्र देखने-सुनने में बहुत छोटी चीज मालूम पड़ती है। आप जो उसका हिस्सा जानते हैं, वह उसकी प्रैक्टिस की बाबत जानते हैं।

आप उसकी थ्योरी की बाबत नहीं जानते हैं। जिसको हम ब्रह्मविद्या कहते हैं, जिसको हम पराविद्या कहते हैं, उसको बहुत कम लोग समझते हैं। आमतौर से लोग केवल पूजा-पाठ में इसे काम में लाते हैं। भजन में काम में लाते हैं, जप में काम में लाते हैं। माला घुमाने के लिए जो अक्षर काम आते हैं, उन्हीं को मंत्र कहते हैं। वे भी अपने आप में शानदार हैं। वस्तुतः मनुष्य की हर समस्या का समाधान करने वाली क्षमता और प्रेरणा गायत्री मंत्र में है। ऋषियों ने अपनी संतान के लिए आवश्यक समझा कि इस धरोहर को हम कंपल्सरी बना दें। इसीलिए उन्होंने दो नियम बनाए हैं।

गायत्री मंत्र का अनुशासन

मित्रो! हिंदू धर्म के दो नियम हैं। मिलेट्री मैन की दो पोशाकें हैं। एक तो उसके नंबर होने चाहिए। 'म.प्र. पुलिस' नंबर होना चाहिए और उसकी कमर में पेटी रहनी चाहिए। अगर आप भारतीय हैं, तो भारतीय संस्कृति के अनुयायी के दो निशान होने चाहिए। एक आपके सिर पर चोटी—शिखा होनी चाहिए और दूसरा आपके कंधे पर जनेऊ रहना चाहिए। चोटी और जनेऊ क्या है? कुछ भी नहीं है।

गायत्री मंत्र के रूप में मस्तिष्क के ऊपर एक अनुशासन, एक अंकुश लगाया गया है। हमारी बुद्धि को, हमारी अक्ल को निरंकुश नहीं होना चाहिए। इसके ऊपर अंकुश रहना चाहिए। हाथी अगर निरंकुश रहें तो कितना नुकसान पहुँचाते हैं, आपको मालूम नहीं है। अफ्रीका में

मुझे बहुत दिन रहना पड़ा है। अफ्रीका में हाथी बहुत पाए जाते हैं और इस कदर घूमते रहते हैं कि सौ-सौ के जत्थे, दो-दो सौ के जत्थे में रहते हैं, लेकिन उनमें एक खराबी यह है कि वे अंकुश में नहीं रहेंगे। उलझ जाएँगे, लेकिन काबू में नहीं रहेंगे। कितना ही मारिए, चाबुक चलाइए, टुकड़े कर डालिए, पर वो किसी के काबू में नहीं आ सकते। इस तरीके से बागी हाथी होते हैं।

मित्रो! उसका परिणाम यह होता है कि अफ्रीका का कोई फायदा नहीं होता। असम में हाथियों से बहुत फायदा है। उन पर वजन ढोते हैं। असम के किसान, असम के मामूली से व्यापारी आठ-आठ हाथी रखते पाए गए हैं। एक-एक हाथी 50-50 टका रोज कमाकर देता है। वे अपनी खुराक के अलावा और ढेरों पैसे कमा लेते हैं, लेकिन अफ्रीका हाथियों की वजह से तबाह हो रहा है। वे जिधर जाते हैं, नुकसान करते हैं। मैं हाथियों की बाबत नहीं कह रहा, मैं अक्ल की बाबत कह रहा हूँ।

बुद्धि पर अंकुश है जरूरी

आदमी की अक्ल के ऊपर अंकुश नहीं लगाया जाए, तो यह खूनी हाथी के तरीके से, पागल हाथी के तरीके से हानिकारक है। आदमी की अक्ल हिंदुस्तान और पाकिस्तान का बँटवारा करा देती है, आदमी की अक्ल ऐसी तबाही ला सकती है। भगवान करे जिन लोगों के पास अक्ल है, वे सब बेअक्ल हो जाएँ। आदमी की अक्ल के बराबर खौफनाक दुनिया में कुछ हो ही नहीं सकता, लेकिन अगर इस पर अंकुश लगा दिया जाए तो ऐसे हाथी के बराबर हो सकती है, जो सवारी के काम आता है, लड़ाई के काम आता है। तमाशा दिखाने सरकस के काम आता है। वजन ढोने और गणेश के समान अक्लमंद हो सकता है।

मित्रो! आदमी की अक्ल बहुत शानदार हो सकती है। इसलिए अक्ल के ऊपर अंकुश लगाने के लिए एक प्रतीक स्थापित किया गया है, एक झंडा फहरा दिया गया है। हमारे सिर के ऊपर जो चोटी स्थापित की गई है, वह गायत्री मंत्र है। **''चिद्रूपिणि महामाये, दिव्यतेजः समन्विते.....''**। हर आदमी को सिर के ऊपर हाथ फिराना चाहिए और यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारे अंदर अक्ल तो है, पर अक्ल के ऊपर अंकुश भी रहना चाहिए, नियंत्रण में रहना चाहिए। चोटी इसका नाम है। अंकुश क्या हो सकता है? गायत्री मंत्र और क्या? गायत्री मंत्र के अंदर जो प्रेरणाएँ भरी पड़ी हैं, दिशाएँ, धाराएँ भरी पड़ी हैं, सामर्थ्य भरी पड़ी हैं, वे सबकी सब ऐसी हैं, जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आदमी की अक्ल पर अंकुश करने में समर्थ हैं।

मित्रो! एक और है गायत्री का प्रतीक, जो हर आदमी के लिए आवश्यक, अनिवार्य और कंपल्सरी बना दिया गया है। वह क्या है? वह है—जनेऊ। जनेऊ क्या चीज है? जनेऊ एक रस्सा है। किस बात का रस्सा है। आदमी को नीति का अनुशासन, मर्यादाओं का अनुशासन, मानवीय कर्त्तव्यों का अनुशासन, सामाजिक नीति और नियमों का अनुशासन आदमी को पालन करना चाहिए। इस आदमी के अंदर के जानवर को एक रस्से से बाँध दिया गया है, लपेट दिया गया है और खूँटे से बाँधने की कोशिश की गई है और यह कहा गया है कि उच्छृंखल नहीं हो सकते। मनमानी आप नहीं बरत सकते। मनमानी मत कीजिए। मर्यादाओं का ध्यान रखिए। सामाजिक जिम्मेदारियों का ध्यान रखिए। मनमाने विचारों पर रोक-थाम कीजिए। मनमाने कामों पर, मनमानी हरकतों के ऊपर अंकुश रखिए।

यह क्या है? यह गायत्री मंत्र है। गायत्री मंत्र वह है, जो शिक्षा से पहले, अक्ल से पहले हर आदमी को सिखाया जाता था। हिंदुओं का गुरुमंत्र है। गुरुमंत्र एक है। बहुत से मंत्र नहीं हो सकते। एक ही मंत्र है। बच्चों का स्कूल में दाखिला होते समय प्राचीनकाल में, ऋषि समय में सबसे पहले जो पढ़ाया जाता था, गायत्री मंत्र पढ़ाया जाता था। इसीलिए इसको गुरु मंत्र कहा गया है। बच्चों को जनेऊ दिया जाता था और गायत्री मंत्र दिया जाता था।

संध्यावंदन का महत्त्व

मित्रो! हिंदुओं की दो बार पूजा होती है—संध्यावंदन। मुसलमानों में पाँच बार नमाज पढ़ी जाती है। हिंदू को प्रातःकाल और सायंकाल—दो वक्त पूजा करनी चाहिए। दो बार की संध्या में गायत्री मंत्र का उच्चारण करिए। अगर आप प्राचीन विधि से संध्या करते हैं, नई विधि अपनी मनमानी से बना ली है तो कौन रोकेगा। फिर आपके ऊपर कानून तो है नहीं कि आप पर कोई बंदिश लगाई जाए कि आपको ऐसे उपासना नहीं करनी चाहिए, लेकिन आप ऋषियों की बंदिश को अगर मानते हों तो आपको प्रातःकाल और संध्याकाल भगवान का भजन करना हो तो उसके लिए गायत्री आवश्यक है, अनिवार्य है।

बेटे! ऐसे नियम और बंधन हमारे ऊपर लगा दिए गए। क्यों लगा दिए गए? ऋषियों ने समझा कि इससे ज्यादा फायदे की चीज, इससे ज्यादा लाभदायक चीज और कुछ नहीं है। वह है—गायत्री मंत्र, जिसका हम प्रचार करते हैं और जिसके बारे में हम ख्याल करते हैं कि यह आदमी की समस्याओं को दूर कर सकता है।

आदमी के सामने हजारों समस्याएँ हैं, लाखों समस्याएँ हैं। ये समस्याएँ कहाँ से आती हैं। भगवान के बेटे के सामने समस्याएँ क्यों? साधारणत: आदमी बीमार पड़ जाता है क्यों? जंगलों में घूमने वाले जानवर क्यों बीमार नहीं पड़ते? आदमी और आदमी की बंदगी में रहने वाले जानवर क्यों बीमार होते हैं?

उसका एक कारण है कि हमको वह गायत्री मंत्र, जिसको हम ऋतंभरा प्रज्ञा कहते हैं, जो शास्त्र के बारे में जब एप्लाइड होती है, तो वह संयम बन जाती है। आज या आज से हजार वर्ष बाद जब कभी भी आपको सेहत ठीक करनी पड़ेगी, बीमारियों से छुट्टी पानी पड़ेगी तो फिर एक ही रास्ता है और वह रास्ता है—आपको अपने आहार-विहार में संयम बरतना पड़ेगा। अपनी जीभ पर काबू पाना पड़ेगा।

मित्रो! यह मैं गायत्री मंत्र की बाबत कह रहा हूँ। अगर आपको ताकत की जरूरत हो, लंबी उम्र की जरूरत हो, तो भी मैं यह आपसे कहता हूँ कि आपको गायत्री मंत्र की उपासना करनी पड़ेगी और उसकी शिक्षा को धारण करना पड़ेगा। आप क्या कहना चाहते हैं? मैं यह कहना चाहता हूँ कि आदमी भीतर की दृष्टि से मजबूत तभी बनेगा, आज या आज से हजार वर्ष बाद उसको ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ेगा और सेहतवान बनना पड़ेगा। आप क्या बात कह रहे हैं?

मैं गायत्री मंत्र की बात कह रहा हूँ। गायत्री मंत्र को तो आप हर बार पूजा की बात कहते रहते हैं। पूजा अपनी जगह है, लेकिन गायत्री का वह अंश जो सर्वसाधारण के लिए, सर्वजनीन, सार्वभौम वाला हिस्सा है, वह वो वाला हिस्सा है जिससे हम मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, नैतिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय—हर समस्या का समाधान कर सकते हैं।

मित्रो! हमारे दिमाग की सड़न—यही बहुत सारी समस्याएँ पैदा करती है, नहीं तो भगवान के इस बेटे के सामने समस्याएँ क्यों होनी चाहिए। भगवान के बेटे को हैरान क्यों होना चाहिए। भगवान के जैसा शानदार जिसका बाप और शानदार जिसका बेटा, वह ऐसे परेशान और हताश खड़ा है। यह वह है, जिसको अपनी माँ के, कामधेनु के दूध से अलग कर दिया गया। आपको गायत्री मंत्र की वह फिलॉसफी फिर से समझनी चाहिए और समझने के बाद में अपनी परंपरा के अनुरूप देवमानव बनने की कोशिश करनी चाहिए और अपनी समस्याओं को हल करने के अलावा औरों की भी समस्याएँ हल करने की कोशिश करनी चाहिए। गायत्री मंत्र ऐसा प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है, जो आपके बाहर के जीवन की आवश्यकताओं को तो पूरा करता ही है, आपके अंतरंग जीवन को भी शानदार बनाता है।

मित्रो! मैं एक बात आपसे पूछता हूँ कि आपके भीतर भी कुछ है क्या? आपके भीतर बहुत शानदार चीज है। सही बात यह है कि जो कुछ बाहर दिखाई पड़ता है, वह तो उसकी छाया मात्र है, छिलका मात्र है। धान का छिलका बाहर दिखाई पड़ता है, चावल भीतर होता है और हमारे बहिरंग का छिलका आपको दिखाई पड़ता है। चावल तो इसके भीतर है। नारियल का छिलका बाहर दिखाई पड़ता है। उसकी गिरी उसके भीतर पाई जाती है।

आदमी में भी गिरी उसके भीतर है और छिलका उसके बाहर है। भीतर वाली गिरी को, भीतर वाले गोले को, भीतर वाली चीजों को ऊँचा उठाने के लिए और मजबूत बनाने के लिए और ठीक बनाने के लिए गायत्री की प्रैक्टिस अपने आप में बड़े काम की चीज है। भीतर वाले हिस्से को हम कैसे अच्छा बना सकते हैं। भीतर वाली दबी हुई दौलत को हम किस तरीके से पा सकते हैं। भीतर वाली अतींद्रिय क्षमताओं को, जो हमारी इंद्रियों की क्षमताओं से हजार गुनी बड़ी हैं, उन्हें हम कैसे पा सकते हैं, यह बहुत शानदार कहानियाँ हैं। अगर आप भीतर वाले को जगा पाएँ, भीतर वाले को मजबूत बना पाएँ, तब आप देखेंगे कि आपका बाहर वाला हिस्सा कितना मजबूत बन जाता है और कितना शानदार बन जाता है।

मित्रो! गायत्री की प्रैक्टिस वह है, अभ्यास वह है; जिससे हम अपने भीतर वाले हिस्से को जो सोया हुआ पड़ा है, जिसकी बाबत में वैज्ञानिकों का यह कहना है कि आदमी को दिमाग की सात फीसदी जानकारी है, 93 फीसदी

जानकारी नहीं है। अतींद्रिय क्षमताओं से लेकर के कितनी दौलत कितना जखीरा दबा पड़ा है इसमें। अगर आप वह प्रैक्टिस, जो हमारे भीतर के अंतरंग हिस्से को जगाने के लिए काम आती है, वह अगर काम में लाई जा सके, तो आदमी शारीरिक दृष्टि से, पैसे की दृष्टि से, अक्ल की दृष्टि से कितना मजबूत हो सकता है, उन्नतिशील हो सकता है।

उससे कहीं ज्यादा भीतर वाले हिस्से को मजबूत बना करके आदमी समर्थ हो सकता है, समुन्नत हो सकता है। मैं आपके सामने गायत्री की उपासना, गायत्री की फिलॉसफी, गायत्री की थ्योरी और गायत्री की प्रैक्टिस—दोनों की बाबत कहने के लिए आया और यह कहने के लिए आया कि अगर इस रास्ते पर आप चल सकें तो आपको इससे बढ़िया मुनाफे का काम, इससे बढ़िया धंधा, इससे बढ़िया तिजारत और कोई दुनिया में नहीं हो सकती।

मित्रो! गायत्री मंत्र की बाबत जो बताया जा रहा है, वह सही है या गलत है। हम कैसे मानें? मैं आपके सामने एक ऐसे गवाह को पेश कर सकता हूँ, जिसकी बाबत आप इनक्वायरी बिठा दें। एक कमेटी बिठाएँ और यह तलाश करें कि गायत्री की बाबत लोगों के जो ख्याल हैं, जो अफवाहें हैं अथवा आदमी कभी-कभी स्वयं ही जिक्र कर देता है। यह बातें कहाँ तक सही हैं। अगर आपको यह बातें सही मालूम पड़ें तो आप यह अंदाज लगा सकते हैं कि इस आदमी ने एक ही धंधा किया है। दूसरा धंधा हमने जाना ही नहीं। वो धंधा यह है कि अपने अंतरंग को विकसित करने के लिए हमने गायत्री का इस्तेमाल किया है। आप भी इसे इस्तेमाल कर सकते हैं और अपने जीवन को धन्य बना सकते हैं। (आज की बात समाप्त)

॥ ॐ शान्तिः ॥

कबीर किसी विधवा के पेट से काशी में जन्मे। माता उन्हें जन्मते ही रास्ते पर पड़ा छोड़ गईं। उन्हें एक मुसलमान जुलाहे ने पाल लिया। वे बड़े होनहार थे। पिता के काम में छुटपन से ही मन लगाकर सहयोग देते। साथ ही स्वामी रामानंद के सत्संग में भी सम्मिलित होते। वहीं उन्होंने पढ़ना, कविता लिखना और वादन करना भी सीख लिया था। जिस प्रकार एकलव्य ने मिट्टी के द्रोणाचार्य को गुरु बनाया था, उसी प्रकार कबीर ने भी रामानंद का शरीरस्पर्श हो जाने और 'राम-राम' कह देने भर से अपनी गुरुदीक्षा पूर्ण हुई मान ली।

कबीर ने वयस्क होते ही कुरीतियों का निवारण, अंधविश्वासों का उन्मूलन, सांप्रदायिक सद्भाव एवं सच्चरित्रता, लोकसेवा में असली भक्तिभावना होने का प्रचार किया। उनके असंख्यों अनुयायी बने। वहीं कट्टरपंथी उनके शत्रु भी बने और त्रास मिलने में कमी न रही, पर कबीर अपने मार्ग पर चलते ही रहे। वे पिता का काम करते हुए आजीविका उपार्जित करते थे।

कबीर ने अपने ही स्वभाव की एक युवती से विवाह कर लिया। वे लंबी अवधि तक जिए और अंत समय लोगों की इस मान्यता का खंडन करने के लिए कि काशी में मरने से मुक्ति होती है—वे मगहर गए। उनके मरते समय हजारों भक्त एकत्रित थे। मुसलमान दफन करना चाहते थे और हिंदू जलाना। झगड़ा बढ़ने लगा तो कबीर की लाश गायब हो गई। कफन के नीचे फूल पड़े रह गए। उन्हीं को हिंदुओं ने जलाया और समाधि बनाई। मुसलमानों ने फूल गाड़े और उस स्थान पर मकबरा बनवाया। ऐसे सच्चे भक्त थे कबीर। उन्होंने जातिगत ऊँच-नीच का जन्म भर विरोध किया।

विश्वविद्यालय परिसर से—195

स्वर्णजयंती वर्ष में अप्रतिम सौभाग्य का अधिकारी बना विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में एक अद्भुत प्रयोग कहा जा सकता है। इसकी प्रतिष्ठा का उद्देश्य भारतीय संस्कृति की उस आधारशिला को स्थापित करना है, जिसमें मानवीय जीवन के समग्र विकास की अवधारणा सुरक्षित रखी गई है। भारतीय संस्कृति प्रत्येक मनुष्य के भीतर सन्निहित दैवी क्षमताओं के अभ्युदय की भावना को विद्याप्राप्ति का केंद्रीय लक्ष्य बताती है और उन्हीं क्षमताओं के जागरण का कार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय करता हुआ नजर आता है।

यही कारण है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के शैक्षणिक ढाँचे में विद्यार्थियों को जीवन एवं समाज के सभी आयामों के प्रति उत्तरदायी होना सिखाया जाता है। इन पहलुओं में से एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर्यावरण है। आज पर्यावरण जिस तरह के प्रदूषण की समस्या से ग्रस्त नजर आता है, उसकी वीभत्सता से हर व्यक्ति परिचित है।

कोई कल्पना करके देखे कि यदि हवा साँस लेने लायक न रह जाए, पानी पीने लायक न रह जाए और धरती अन्न उपजाने से मना कर दे तो उसका दुष्परिणाम मात्र एक जाति या देश तक सीमित नहीं रह सकता। ऐसी अवस्था में संपूर्ण मानव जाति को उस दुष्परिणाम को भुगतने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। आज की परिस्थितियाँ कुछ इसी तरह की कहानी कहती नजर आती हैं।

इसीलिए यह आवश्यक हो गया है कि आज के विद्यार्थी, जो कल का भविष्य हैं—वे अभी से पर्यावरण संरक्षण के प्रति अपने उत्तरदायित्व को महसूस करें और उसके संरक्षण के लिए भरपूर प्रयास करें। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थी इस दृष्टि से अनूठे हैं। विगत दिनों पर्यावरण दिवस के अवसर पर उनके अवकाश का क्रम होते हुए भी उनके द्वारा एक राष्ट्रव्यापी अभियान, ऑनलाइन माध्यम से प्रारंभ किया गया, जिसमें अनेक गणमान्य अतिथियों ने न केवल भाग लिया, बल्कि सभी ने वृक्षारोपण कर उनका उत्साहवर्द्धन भी किया।

इस अवसर पर विद्यार्थियों द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में प्रतिष्ठित पर्यावरणविद् श्री आर्या जी, श्री रावत जी ने उपस्थित होकर विद्यार्थियों का मान बढ़ाया एवं विद्यार्थियों के द्वारा वृक्षारोपण का संकल्प भी लिया गया। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने विद्यार्थियों को उनके द्वारा लिए गए इस प्रेरणादायी प्रयास के लिए प्रोत्साहित किया और इस तरह के प्रयासों को आज के समय की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बताया।

उल्लेखनीय है कि पर्यावरण दिवस को ही गायत्री परिवार के कलकत्ता शाखा द्वारा चलाए जा रहे वृक्षारोपण सप्ताह का 555वाँ सप्ताह मनाया गया और बड़ौदा शाखा द्वारा 250वाँ सप्ताह मनाया गया। निस्संदेह बृहत्तर गायत्री परिवार के द्वारा चलाए जा रहे पर्यावरण संरक्षण के प्रयास विद्यार्थियों के लिए सदा प्रेरणा का स्रोत और कारण बनते हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय सदा ही उल्लेखनीय आयोजनों की भूमि रहा है। इस क्रम में विगत दिनों एक अप्रतिम सौभाग्य भी आकर जुड़ा, जब देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में गायत्री जयंती के पावन पर्व पर एवं परमपूज्य गुरुदेव के महाप्रयाण दिवस के शुभ अवसर पर भारत सरकार के द्वारा शांतिकुंज के स्वर्णजयंती वर्ष के उपलक्ष्य में **स्मारक डाक टिकट** जारी किया गया।

यह कार्यक्रम केंद्रीय मंत्री श्री रविशंकर प्रसाद जी के मुख्य आतिथ्य में एवं उत्तराखंड के मुख्यमंत्री श्री तीरथ सिंह रावत जी के अतिविशिष्ट आतिथ्य में संपन्न हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता देव संस्कृति विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या एवं श्रद्धेया शैल जीजी के द्वारा की गई। संपूर्ण कार्यक्रम कोविड-19 के अनुशासनों का पालन करते हुए भारतीय डाक विभाग के अनेक गणमान्य अधिकारियों के एवं भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।

ज्ञातव्य है कि उत्तराखंड के प्रतिष्ठित व्यक्तित्वों एवं संस्थानों के नाम पर इससे पूर्व अब तक के इतिहास में 27 डाक टिकट जारी किए गए थे। यह अभूतपूर्व सौभाग्य मात्र गायत्री परिवार को ही प्राप्त हुआ, जहाँ एक ही संस्थान को

दो बार स्मारक डाक टिकट का अधिकारी बनने का सुयोग मिला।

इससे पूर्व परमपूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व के ऊपर 27 जून, 1991 को परमवंदनीया माताजी की उपस्थिति में तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री शंकरदयाल शर्मा जी द्वारा डाक टिकट जारी किया गया। इस डाक टिकट का जारी होना इस सत्य की पुनः प्रतिष्ठा करता है कि शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा किए जा रहे विभिन्न क्रियाकलापों का न केवल सामाजिक दृष्टि से सम्मान है अपितु प्रशासनिक दृष्टि से भी शांतिकुंज को एक राष्ट्रीय गौरव के रूप में देखा जाता है।

इस महत्त्वपूर्ण गौरव का अधिकारी बनने के तुरंत बाद ही देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा एक राष्ट्रव्यापी अभियान को प्रारंभ किया गया, जिसका उद्देश्य इस स्वर्ण जयंती वर्ष में हर घर तक परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित प्रज्ञायोग को एक समग्र साधनापद्धति के रूप में पहुँचाना है। इस अभियान का लक्ष्य ही है—**घर-घर पहुँचे प्रज्ञायोग, देश अपना बने निरोग।**

अखण्ड ज्योति के पाठक परिचित हैं कि प्रज्ञायोग साधना परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित एक ऐसी समग्र साधना है, जिसका उद्देश्य शरीर, मन एवं अंतःकरण—तीनों का संपूर्ण परिमार्जन करना एवं रूपांतरण करना है। इस वर्ष देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने प्रज्ञायोग को घर-घर पहुँचाने का संकल्प लिया और अंतरराष्ट्रीय योग दिवस पर पहली बार प्रज्ञायोग को अंतरराष्ट्रीय प्रोटोकॉल के रूप में प्रसारित किया गया। ❑

गाँव के बाहर रास्ते में ज्येष्ठ की तपती दोपहरी में एक वृद्ध व एक युवक मूर्च्छित पड़े थे। अनेकों उन्हें देखकर गुजर गए, परंतु एक व्यक्ति रुका, उन पर जल छिड़ककर उन्हें होश में लाया। पूछने पर उन्होंने बताया कि वे दोनों काम की तलाश में अपना गाँव छोड़कर निकले हुए हैं और तीन दिन से कुछ खाया नहीं है। वह उन पिता-पुत्र को अपने घर ले गया। भोजन कराकर रास्ते के लिए कुछ व्यवस्था कर उन्हें विदा दी।

उनके तृप्त होकर जाने के पश्चात भी उस व्यक्ति को संतुष्टि नहीं मिली और उसे ऐसे अन्य व्यक्तियों को मिल रही पीड़ा के विषय में सोचकर अशांति होने लगी। उसने अपनी पत्नी से विचार-विमर्श किया और यथासंभव ऐसे लोगों की सहायता करने का संकल्प लिया। वर्षों तक यह क्रम चलता रहा।

एक दिन एक साधु आए और उन दोनों की परमार्थपरायणता को देखकर उन्हें एक झोली देकर चले गए, जो कभी खाली नहीं होती थी। गुजरात के वीरपुर गाँव के ये दंपती थे—जलाराम बापा और वीरबाई। दुःखी मानवता की सेवा और कर्त्तव्यपरायणता का यह आदर्श उदाहरण आज भी कइयों के मन में प्रेरणा पैदा करता है।

अपनों से अपनी बात

आध्यात्मिक-उत्कर्ष के दो आधार

सादा जीवन-उच्च विचार

हम लोग जब छोटे से बच्चे थे तब से लेकर आज तक, जब हम वयस्क हो गए हैं, हो चुके होंगे या होने वाले होंगे—हमको समाज ने एक नियम बड़ी व्यग्रता से सिखाया है और वो यह सिखाया है कि यह समाज प्रगति की व्याख्या, विकास का मूल्यांकन सामाजिक सफलता के आधार पर करता है। व्यक्ति जीवन में प्रगति कर पा रहा है या नहीं कर पा रहा है—इस तथ्य का मूल्यांकन इस आधार पर तय होता है कि वह सामाजिक दृष्टि से सफल हो पाया अथवा नहीं।

इसी मानसिकता के कारण लोग छोटे-छोटे बच्चों को भी यह सिखाते देखे गए हैं कि उन्हें कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करना है, स्वर्णपदक लाना है, अमेरिका जाना है; क्योंकि सामाजिक संदर्भों में प्रगति का अर्थ प्रतिद्वंद्विता से लिया जाता है। समाज की दृष्टि में सफलता का अर्थ इसी भाग-दौड़ के आधार पर निकलता है। इसी कारण से आज समाज इन बातों पर ज्यादा ध्यान देता दिखता है कि किसका घर कितना बड़ा है, किसके पास कौन-सी गाड़ी है, किसने कितने पैसे कमाए हैं। आज के इस भाग-दौड़ के समय में ये सतही बातें ही सफलता की परिभाषाएँ बन चुकी हैं।

इन सतही मंजिलों को पाने की दौड़ में व्यक्ति मूल्यों से समझौता कर बैठते हैं। गलत राह को एवं गलत चाह को अपनाने लगते हैं; क्योंकि सफलता के मानदंड आज बाहरी पैमानों पर तय किए जा रहे हैं। यह करते हुए हम यह भूल ही जाते हैं कि मानवीय जीवन मिला था—हम अपने उद्देश्य को, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाए या नहीं। आत्मिक संतोष, आत्मज्ञान, आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त कर पाए या नहीं—इस ओर समाज की न तो दृष्टि दिखाई पड़ती है और न दिशा; क्योंकि आज सभी ने सफलता के मानदंड बाहरी पैमानों पर तय कर दिए हैं।

यह देखकर क्या किसी को आश्चर्य नहीं होगा कि मनुष्य पूरे विश्व की बल्कि दूसरे ग्रहों की समीक्षा भी पूरी तरह से करता है, पर फिर क्यों मात्र अपनी ही समीक्षा करने से चूक जाता है?

परमपूज्य गुरुदेव कहते थे कि मनुष्य का मन निरंतर ताने-बाने बुनता रहता है, उसका शरीर भी कुछ-न-कुछ सदा करता ही रहता है, फिर जिंदगी भर इतना दौड़ने के बाद भी इनसान के मन में इतना असंतोष, इतना खालीपन, इतनी रिक्तता क्यों है?

सारी जिंदगी मनुष्य कुछ-न-कुछ पाने के लिए दौड़ता ही नजर आता है, जीवन भर व्यक्ति कुछ-न-कुछ बटोरना ही चाहता है, फिर भी यह खालीपन इनसान के मन में क्यों रह जाता है? यह इसलिए रह जाता है; क्योंकि कहीं गहरे में मनुष्य के मन में यह बात बैठ गई है कि ये खेल-खिलौने, ये कागज के टुकड़े—जो रुपया, पैसा, गाड़ी व मकान के नाम से जाने जाते हैं—ये अंदर के खालीपन को भर सकते हैं।

मजेदार बात यह है कि आज तक इस दौड़ ने किसी को पूर्णता, किसी को शांति प्रदान नहीं की, पर तब भी यह दौड़ जारी रहती है। ज्यादा साधन आ जाने से मन की दरिद्रता कम नहीं होती, बल्कि और ज्यादा स्पष्ट हो जाती है। पैसे बढ़ जाने से व्यक्ति का दिल नहीं बड़ा हो जाता और पद बड़ा हो जाने से हमें अध्यात्म नहीं मिल जाता।

ये बातें इस दृष्टि से लिखी जा रही हैं; क्योंकि परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी ने शांतिकुंज की स्थापना के पीछे एक उद्देश्य यह रखा कि यहाँ व्यक्ति सादा जीवन-उच्च विचार के भाव से रह सके। इसकी स्थापना के पीछे एक महत्त्वपूर्ण भाव यह था कि समाज यहाँ से प्रेरणा लेकर यह अनुभव कर सके कि जीवन में तृप्ति, तुष्टि, शांति—बाहर की समृद्धि से नहीं, बल्कि भीतर के संतोष से आते हैं।

जीवन में सच्ची शांति, आंतरिक पूर्णता के माध्यम से ही मिल पाती है। सोचने वाली बात है कि यदि जीवन का लक्ष्य, मानवीय जीवन का उद्देश्य मात्र पेट भर लेना रहा होता तो जानवर इस काम को हमसे बेहतर कर पाते हैं। यदि जीवन का लक्ष्य मात्र अपने परिवार को बड़ा कर लेना रहा होता तो लगभग पूरे विश्व ने ही मानवीय जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया होता।

यह सभी जानते हैं कि उपरोक्त दो बातें—पेट भर लेना व परिवार बड़ा कर लेना मानवीय जीवन का लक्ष्य नहीं कही जा सकती हैं। मनुष्य का जीवन हमें मिलता ही इसलिए है, ताकि हम अपने सच्चे स्वरूप को, अपनी दैवी विरासत को स्वीकारते हुए, आंतरिक उत्कृष्टता का परिचय देते हुए, भगवान की इस सृष्टि की कुशलतापूर्वक देख-भाल करते हुए देवमानवों जैसा जीवन जी सकें। ऐसा जीवन मात्र परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी द्वारा प्रदत्त सिद्धांत सादा जीवन-उच्च विचार पर चल करके ही जी पाना संभव है।

शांतिकुंज की स्थापना के पीछे परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी का भाव यह था कि वर्तमान की परिस्थितियों में गायत्री परिवार के दैवी भाव लिए हुए व्यक्तियों के अतिरिक्त और कौन इस सत्य को स्वीकारेगा और स्वीकार लेगा तो अपनाएगा। आज लोग छलावों में और भूलभुलैया में जीवन बिताना श्रेयस्कर समझते हैं। जीवनलक्ष्य की बातें सुन भी लें और हो सकता है कि उनको अच्छी भी लगें, पर फिर थोड़े समय बाद वही पुरानी दिनचर्या, वही पैसे के पीछे की भाग-दौड़ जीवन का हिस्सा बन जाती है।

ऐसे में मानवता के भविष्य को ध्यान में रखकर परमपूज्य गुरुदेव ने एवं परमवंदनीया माताजी ने सादा जीवन-उच्च विचार के केंद्र के रूप में शांतिकुंज को प्रतिष्ठित किया। प्रलय के समय भगवान मनु ने प्राणी जगत् की श्रेष्ठ आत्माओं को अपनी नाव पर बैठा लिया था, ताकि उनके माध्यम से सृष्टि के नवनिर्माण के कार्य को संभव बनाया जा सके। शांतिकुंज का निर्माण भी परमपूज्य गुरुदेव ने इसी भाव एवं उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया है एवं यहाँ इसीलिए चुन-चुनकर ऐसी आत्माओं को आमंत्रित किया है, ताकि यहाँ ये विश्वसृजन के कार्य को संपन्न कर सकें ।

विश्व के नवसृजन के कार्य में सादा जीवन-उच्च विचार के चिंतन को ही आधार माना जा सकता है। उसके बिना उस कार्य को कर पाना संभव नहीं है। शांतिकुंज की स्थापना की स्वर्ण जयंती के सुअवसर पर उसी महान उद्देश्य को याद करना हमारी जिम्मेदारी बन जाती है, जो इस पवित्र परिवार की प्रतिष्ठा का केंद्रीय आधार रहा है। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि साधक दो प्रकार के होते हैं—''एक बंदर के बच्चे जैसे और दूसरे, बिल्ली के बच्चे जैसे। बंदर का बच्चा स्वयं ही माँ को पकड़े रहता है तो इसी तरह कुछ साधक सोचते हैं, हमें इतना जप करना चाहिए, इतनी देर तक ध्यान करना चाहिए, इतनी तपस्या करनी चाहिए तब ईश्वर मिलेंगे। पर बिल्ली का बच्चा खुद अपनी माँ को नहीं पकड़ता। वह तो बस, पड़ा हुआ 'मीऊँ-मीऊँ' करके माँ को पुकारता है और उसकी माँ उसे चाहे जहाँ रख दे। इसी तरह कोई साधक स्वयं हिसाब करके साधन-भजन नहीं कर सकता कि इतना जप करूँगा, इतना ध्यान करूँगा। वह केवल व्याकुल होकर रो-रोकर उन्हें पुकारता है। उसका रोना सुनकर वे फिर नहीं रह सकते और ईश्वर दर्शन दे ही देते हैं।'' व्याकुल होकर परमात्मा को पुकारने वाले ही सच्चे साधक होते हैं।

आओ भीतर झाँकें

बंद हो गया है जब बाहर आना-जाना।
चलो खँगालें भीतर का अनमोल खज़ाना॥
ख़ालीपन है, क्षमताओं का क्षरण नहीं है,
कहीं व्यस्तताओं का भी आवरण नहीं है,
स्पष्ट सामने अपनी छवि दिखती दर्पण में,
सावधान करती है वही हमें क्षण-क्षण में,
संभव वहाँ न होता कोई तर्क-बहाना।

बाह्य क्रिया प्रत्येक पूर्णतः थमी हुई है,
मन की चंचलता में भी कुछ कमी हुई है,
यही समय है उसे और थोड़ा-सा साधें,
उसकी शक्ति लोक-मंगल के लिए लगा दें,
संकट-वेला में सीखें वह पुण्य कमाना।

मन में ही रहता पूरा ब्रह्मांड समाया,
यहाँ न कोई होता अपना और पराया,
सबमें होता एक शक्ति का वास निरंतर,
होता रहता है जिसका आभास निरंतर,
सीखें इन्हीं दिनों उससे संपर्क बढ़ाना।

घर में जो अब तक वंचित परित्यक्त रहे थे,
जिनके भाव-विचार सदा अव्यक्त रहे थे,
जो तरसा करते थे केवल एक झलक को,
और दबाए रखते थे प्रत्येक ललक को,
शुरू करें अपने उन बच्चों से बतियाना।

समय मिला है अपने भीतर भी हम झाँकें,
अपनी-अपनी कीमत आज स्वयं हम आँकें,
स्वयं उघाड़ें एक-एक कर मन की परतें,
देखें कहाँ शांति है, कहाँ भरी आवर्तें,
सीखें कुछ पल को निर्वैयक्तिक हो पाना।

—शचीन्द्र भटनागर

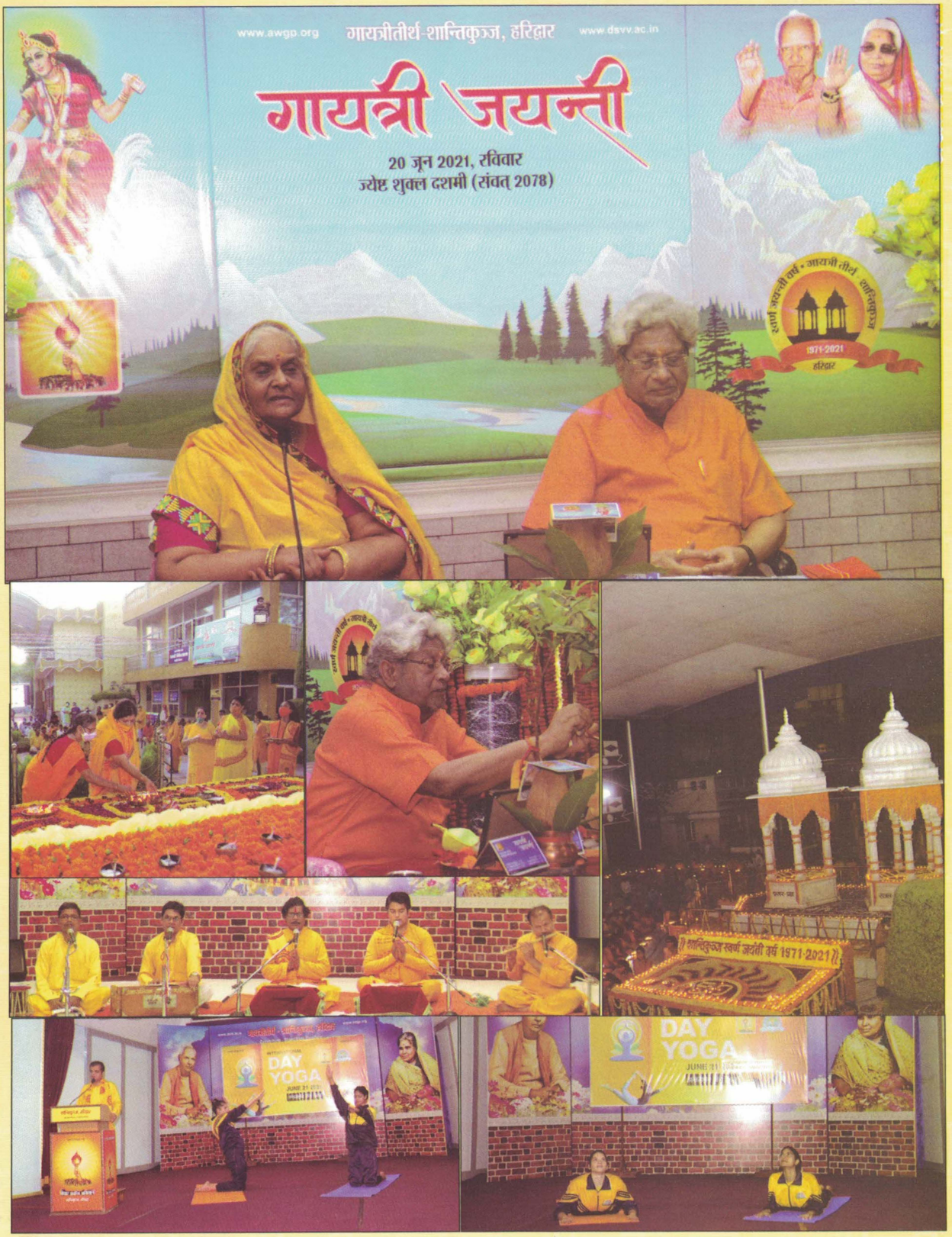

गायत्री जयंती, गंगा दशहरा पर्व एवं अंतरराष्ट्रीय योग दिवस युगतीर्थ शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-08-2021
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

युगतीर्थ शांतिकुंज हरिद्वार की स्वर्णजयंती पर श्री रविशंकर प्रसाद(संचार इलेक्ट्रानिक एवं सूचना प्रौद्योगिकी और विधि एवं न्याय कैबिनेट मंत्री) भारत सरकार द्वारा स्मारक डाक टिकट माननीय मुख्यमंत्री (उत्तराखंड) श्री तीरथ सिंह रावत आदि गणमान्य नागरिकों की उपस्थिति में जारी

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूर भाष–0565-2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मो बा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org